चतुर्थ अध्याय

जैनेंद्रकुमार के नारी प्रधान उपन्यासों में विभिन्न नारी समस्याएँ

अ) विवाह, अनमेल विवाह
आ) पत्नी तथा अनैतिकता
इ) पुरुषों द्वारा नारी का शोषण
ई) नारी मन की दुर्बलता
क) नारी की राजनैतिक शक्ति की समस्या
ख) वेश्यावृत्ति की समस्या
घ) परित्यक्ता नारी
ड) स्वच्छन्द प्रेम की समस्या

चतुर्थ अध्याय

जैनेंद्रकुमार के नारी प्रधान उपन्यासों में विभिन्न नारी समस्याएँ ---

✓ | नारी जीवन की समस्याओं की दृष्टि से प्रेमचंद युग के और प्रेमचंदोत्तर काल के उपन्यासों में मूलभूत अंतर हैं। प्रेमचंद युग में मुख्यत: नारी की सामाजिक समस्याओं का ही चित्रण हुआ हैं। जब कि फ्रायड, युग, एड्लर आदि मनोविश्लेषणवादियों के प्रभाव के कारण प्रेमचंदोत्तर काल में नारी नारी-मन की मनोवैज्ञानिक गुत्थियाँ मुख्य समस्या बन गयी। यद्यपि अब भी समाज में बाल - विवाह, विधवा विवाह, अनमेल विवाह, वेश्या समस्या आदि समस्याएँ बनी हुई थी। इस काल में लेखक ने नारी मन की उथल-पुथल, स्त्री-पुरुष के आकर्षण - विकर्षण अर्थात काम भाव की समस्या को गहराई से देखना - समझना प्रारंभ किया। इसके अतिरिक्त नारी की वैयक्तिक और आर्थिक स्वतंत्रता को जितना खुला समर्थन इस युग के उपन्यासों में मिला हैं, उतना पूर्ववर्ती उपन्यासों में नहीं मिलता।

भारतीय समाज में नारी के स्वतंत्र अनास्तित्व का बोध होता हैं। समाज के सारे धर्म, नीति, नियम केवल नारी के लिए बने हैं। यदि पुरुष कोई अनुचित कार्य करता हैं तो उसपर समाज की दृष्टि नही जाती लेकिन वही कार्य कोई स्त्री कर बैठे तो कुलटा, पतिता और भी न जाने कितने ही विशेषणों से समाज उसे कलंकित कर देता हैं। |

वैसे तो जैनेंद्रजी सामाजिक उपन्यासकार भी थे, इसका सजीव चित्रण जैनेंद्रजी के उपन्यासों में दिखाई देता हैं। और अपने सामाजिक उपन्यासों में नारी मनोविज्ञान का सुंदर ढंग से चित्रांकन भी किया हैं। जैनेंद्रजी ने अपने उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं के चिंतन की एक नयी दिशा का संकेत किया हैं। अबतक सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में व्यक्ति का मूल्यांकन करने का प्रयास किया हैं। उनके

नारी पात्र व्यक्तिवादी धरातल पर अत्यंत स्वच्छन्द विचारों के तथा विद्रोह से सृजित हैं ।

जैनेंद्रकुमार एक चिंतक उपन्यासकार थे । उनके उपन्यासों में व्यक्ति अध्ययन और सूक्ष्म कथानक - सूत्रों के अतिरिक्त कतिपय सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत जैनेंद्रजी ने विवाह परिवार तथा जीवन असंमजन के सम्मुख प्रश्नचिन्ह लगाया है। इन क्षेत्रों में प्राय: जीवन को संतुलित रखने के लिए अनेक प्रयास करने पडते हैं। जिनका अभाव जैनेंद्र के पात्रों का जीवन दूभर करता और उन्हें आस्था-अनास्था के बीच भटकने को छोड देता हैं । जैनेंद्रजी ने ऐसी विचित्र समस्याओं के कतिपय समाधान भी प्रस्तुत किए हैं, किंतु वे इतने असाधारण हैं कि प्राय: उनकी व्यावहारिकता में संदेह होने लगता हैं ।

उपन्यास क्षेत्र में वर्णित नारी जीवन की समस्याएँ को दो भागों में विभाजित किया जाता हैं --

(१) पारिवारिक समस्याएँ

(२) सामाजिक समस्याएँ

हमारे कथन का प्रमाण प्रारंभिक उपन्यास `परख ` से ही मिलने लगता हैं । `परख ` की कट्टो बचपन में विधवा हो गई हैं । समाज उसे पुनर्विवाह की छूट नही देता किंतु पास - पडोस में सत्यधन जैसे बाल-मित्र का सम्पर्क तो उससे अलग नहीं किया जा सकता । और मैत्री की छेड-छाड, शरारत और अविकसित विवेक यदि कहीं प्रेम का बीजारोपण करें तो क्या वैचित्र्य ? कट्टो शायद सत्यधन को चाहने लगी थी, किंतु एक नीची जाति और दूसरे विधवा, समाज फट नहीं जायगा ? यहाँ आता हैं एक सुधारवादी - बिहारी । बिहारी कट्टो से विवाह करेगा - सत्यधन की लाज भी रह जायगी और कट्टो का कल्याण भी होगा । किंतु विवाह के संभावित सामाजिक विघ्न । ऐसे में सुधारवादी आदर्श यही कहता हैं कि दोनों आदर्श के क्षेत्र में एक, किंतु संपर्क में अलग और दूर रहकर ही एक - दूसरे के बने रहें । आदर्श अच्छी चीज हैं । बिहारी किसानों को हल चलाए और

कट्टो गाँव में बच्चे पढ़ाए । पिता की संपत्ति से प्राप्त धन भी व्यर्थ मानकर लुटा दिया जाय, किंतु दूर की निकटता का आदर्श उन्हें क्या इसीलिए नहीं अपनाना पड़ा होगा । क्योंकि कट्टो बिहारी का खुला संपर्क समाज को स्वीकार्य न हो सकता था । दोनों ने अपने कार्य के लिए जुदा-जुदा गाँवों का चुनाव भी क्या इसी-लिए न किया, होगा, ताकि अधिक समीपता के कारण चारित्रिक लांछन न लगने लगे । सत्यधन न चाहते हुए भी क्या अन्तत: धन के लिए ही गरिमा से विवाह नहीं करता ? तात्पर्य यह कि उक्त उपन्यास में जैनेंद्र ने एक ओर समाज में विधवा-पुनर्विवाह निषेध का रंग दिखाया है, तो दूसरी ओर धन संपत्ति की तुला पर तुलते दूल्हे । दोनों स्थितियाँ समाज का धुम है, किंतु बिहारी और कट्टोवाला समाधान जन-साधारण की पहुँच में नहीं ।

जैनेंद्र जी के द्वितीय उपन्यास 'त्यागपत्र' में भी वही सामाजिक विवशता प्रस्तुत की गई है । शीला के भाई से मृणाल का विवाह न करके उसे असमान दाम्पत्य की चक्की में पिसने को सामाजिक कारणों से ही तो विवश किया गया है । पुन: वह अपनी समूची शक्तिभर उसी से सामंजस्य बनाने को तत्पर है , किंतु पति की शंकालु प्रकृति उसके लिए पारिवारिक समस्या बन जाती है । परिवार में तिरस्कार, मारपीट और बलात् घर से निकाली जाने का ही यह परिणाम था कि वह निरन्तर पतन के गर्त की ओर बढ़ती चली गई । एक अनाथ कन्या पहले भाई-भावज की उपेक्षा का शिकार बनी, फिर पति द्वारा तिरस्कृत हुई और तब कोयलेवाले की रखैल बनी रह कर भी जीवन का कोई सुखद पक्ष-भोग नहीं कर सकी । यहाँ हमारा दृढ विश्वास है कि यदि मृणाल के भाई-भावज लोक लाज के सम्मुख नतमस्तक न हुए होते, या उसका पति समाज के समर्थ पक्ष का होने के कारण उस पर अत्याचार का साहस न करता, तो मृणाल भी एक सुखद गृहस्थी की स्वामिनी होती और गौरवपूर्ण जीवन बीती । यहाँ सामाजिक पक्षपात, प्रेम-पथ का सहज अवरोध और जीवन के यथार्थ का सामना आखिर अबला मृणाल एक साथ कब तक कर सकती थी ? प्रमोद आर्थिक स्वातंत्र्य प्राप्त करके भी तो बुआ के पक्ष में समाज से नहीं लड़ सका । समाज के कड़े बन्धन और उनके रहते मृणाल

सरीखी अनेक युवतियों का बलिदान, लेखक द्वारा औपन्यासिक समस्या बनाकर ' त्याग-पत्र ' में प्रस्तुत किया गया है।

इसी रचना में एक और सामाजिक समस्या की ओर भी जैनेंद्रजी ने संकेत किया है? क्या सुधारवादी लोग, जो समाज का ठेका उठाने का दम भरते हैं, मृणाल सरीखी पतनोन्मुखी युवतियों को हाथ थाम सहारा दे सकते हैं? क्या वे उनके रहने, खाने, पहनने का सामान्य-सा प्रबन्ध करके भी उन्हें उस दुर्गन्धपूर्ण वातावरण से निकालने को तैयार हैं? यदि नहीं, तो उन्हें ऐसी औरतों की आलोचना करने, उनकी मजबूरियों को भर्त्सनापूर्वक दुत्कारने का क्या अधिकार है? यही प्रश्न है, जिसके कारण जैनेंद्र को मृणाल से भरपूर सहानुभूति है।

उपर्युक्त दोनों समस्याओं का कोई यथार्थ हल लेखक ने प्रस्तुत नहीं किया। सहानुभूतिया भावुकता से कब तक पेट चलेगा?

' सुनीता ', ' सुखदा ' और ' कल्याणी ' में सामाजिक पृष्ठभूमि लगभग समान है। तीनों नायिकाओं का दाम्पत्य जीवन सुखद नहीं है -- असंतुष्टि के कारण अलग अलग हैं। सुनीता का वैवाहिक जीवन थमे जल की भाँति गंधाने लगा है। स्वयं श्रीकांत महसूस करता है कि उसे कुछ नवलता के साँचे में ढालना अपेक्षित है। इसी तथ्य को अन्त तक निभाते हुए वह सुनीता और हरिप्रसन्न के बढ़ते हुए सम्बन्धों को जानकर भी ' अवर क्वीन केन डू नो रौंग ' कहकर टाल जाता है। सुनीता का हरिप्रसन्न की ओर बहकना मानसिक कारणों से था, जब कि श्रीकांत द्वारा उसे छूट दिया जाना सामाजिक मजबूरी थी। श्रीकांत अपनी नपुंसकता को छिपाने के लिए ही वास्तव में अपनी पत्नी को अपने मित्र हरिप्रसन्न से घुल-मिल जाने की प्रेरणा देता है। उसे सुनीता के पातिव्रत पर संदेह नहीं है, तथापि शायद उसका विश्वास है कि सुनीता के भटकने से पूर्व ही उसकी अपेक्षा घर में पूरी होने लगे, तो वह अधिक संतुलित रह सकेगी। तभी तो बार-बार वह सुनीता को हरिप्रसन्न के प्रति जागरूक रहने का आदेश देता है। उन्हें अकेले कुछ दिन रहने का अवसर देता और पथ-भ्रष्ट होते-होते संभलने पर भी सुनीता के कृत्य को बुरा न मानते हुए टाल देता है। इसलिए

कहा जा सकता है कि श्रीकान्त की भूमिका अपने भीतर एक मनो-सामाजिक समस्या को सजग बनाए हुए है।

सुखदा के असन्तुष्ट दाम्पत्य का कारण विवाह पूर्व की वे कल्पनाएँ और सुनहरे सपने हैं, जिनसे वह एक सम्पन्न गृहस्थी, समृध्द पति तथा हर प्रकार की आर्थिक सुविधा की आशा करने लगी थी। किंतु शायद भाग्य ने साथ नहीं दिया और केवल डेढ सौ रुपल्ली मासिक पानेवाले एक साधारण लिपिक से उसका विवाह हुआ। वह लाख चाहते हुए भी अपनी चादर के अनुसार पैरों को सिकोड नहीं पाई और क्रान्तिकारी (नौकर) लडके के पकडे जाने के मिस अपनी स्थितिपर पनट पडी। घर से बाहर निकलकर आकाश की व्यापक निलिमा से सुखदा ऐसी खोई कि पति कान्त को विस्मृत हो कर बैठी। पुत्र की भी उपेक्षा कर बैठी वह, और उसने अपने विवाह पूर्व के सुनहरे सपनों को साकार करने के लिए दाम्पत्य च्युत तक होना भी स्वीकार कर लिया।

वास्तव में 'सुनीता' और 'सुखदा' दोनों उपन्यासों में जैनेंद्र ने एक अतीव महत्वपूर्ण स्थिति की ओर संकेत किया है। शायद जैनेंद्र की मान्यता है कि गृहस्थी या घर का घेरा एक ऐसा पावन परिवेश होता है, जिसमें सांस लेनेवाला प्रत्येक व्यक्ति रक्त के नाते से एक-दूसरे का इतना आत्मीय होता है कि उन सब का सुख-दुःख साझा हो जाता है। किन्तु घर में बाहर का प्रवेश प्रायः अनिष्टकर और लापरवाही के कारण गृह भंजक हो जाता है। इसी सामाजिक तथ्य को जैनेंद्र ने उक्त दोनों उपन्यासों में बड़े कौशल से चित्रित किया है। सुनीता में हरिप्रसन्न तथा 'सुखदा' में लाल का प्रवेश ही तो दोनों के दाम्पत्य के शांत जल में विष्फोटक तरंगों का काम करने लगा है।

उपन्यास की दूसरी प्रमुख समस्या 'राष्ट्रवाद बनाम मानवतावाद' है। बीसवीं शती के पूर्वार्ध्द में राष्ट्रवादी विचारधारा ने जन्म लिया। प्रथम और द्वितीय महायुध्द इसी विचारधारा के परिणाम थे, किंतु द्वितीय महायुध्द की समाप्ति से पूर्व ही विश्व के कुछ महापुरुषों ने राष्ट्रवाद की कमियों को और

अन्तराष्ट्रवाद तथा मानवतावाद के बीजरोपण किए । भारतवर्ष में रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी, महर्षि अरविन्द आदि महापुरुषों ने मानवतावाद का दृष्टिकोण प्रदान किया । विनोबाजी के सर्वोदयी आंदोलन ने इसे और विकसित किया ।

जैनेंद्रकुमार ने यहाँ राजनीति में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के माध्यम से मानव-संस्कृति को आलोकित किया है । उनका विश्वास है कि यदि आज के राजनीतिक नेतागण राष्ट्रीयता की संकीर्ण सीमाओं से बाहर मानवता की व्यापक धरती को मापने का प्रयास करें, तो विश्व में शांति, सद्भावना और स्नेह विकास हो सकता है । जैनेंद्र जी ने इस उपन्यास में एक छोटी-सी सामाजिक समस्या भी उठाई है । सामाजिक अन्याय क्यों होता है सभी तो जानते हैं कि अन्यायी या अत्याचारी लोग गिनती के ही होते हैं, फिर भी क्योंकि भले व्यक्ति उनका सामना करने से बचते हैं, उनका सिर नहीं कुचल देते, इसलिए उनका अन्याय बढ़ता है और वे खुलेआम भले लोगों को कष्ट पहुँचाने में सफल हो जाते हैं । इस तरह का अन्याय तब तक समाप्त नहीं हो सकता जब तक बहुसंख्यक सज्जन अल्पसंख्यक दुर्जनों का डटकर मुकाबला नहीं करते । सज्जन का मौन जहाँ दुर्जन को दुष्टता करने की छूट देता है, वहाँ उस दुष्टता का कुछ दायित्व सज्जन पर भी आ जाता है ।

उपर्युक्त समस्त समस्याओं में उठाई समस्याओं का कोई विशेष हल पेश नहीं किया है । प्रत्येक समस्या, उसका वातावरण और मकड़ी के जाल में फँसी। मक्खी की नाई भिनभिनाता और मुक्ति के लिए प्रयास करता हुआ पात्र, सब आपे-आप में अलग है । सब ओर व्यक्तित्व की सीमा का प्रसार है, इसलिए कहीं भी बिना हल के दी हुई समस्या अखरती नहीं । जैनेंद्रजी चिन्तक - औपन्यासिक हैं, इसलिए उनकी समस्याओं के गहरे स्तर पर उक्त समस्या का दार्शनिक विश्लेषण जरूर देखने को मिल जाता है । निष्कर्ष यह कि जैनेंद्रजी ने अपने उपन्यासों में जो समस्याएँ उठाई हैं, वे सामाजिक, राजनीतिक या मनोवैज्ञानिक होते हुए भी समाधान स्तर से ऊपर हैं, केवल चिन्तन विश्लेषण स्तर तक ही उनका अध्ययन किया गया है ।

(अ) विवाह --

विवाह के बारे में प्रतापनारायण श्रीवास्तवजी कहते हैं ' हिन्दू समाज में कन्या का विवाह धार्मिक दृष्टिसे अनिवार्य माना गया है। इसीलिए माँ-बाप किसी न किसी प्रकार अपनी लड़की को विवाहित देखना चाहते हैं। ' हिन्दू समाज में जन्म होने के अभिशाप की मुक्ति है विवाह।'[१] यही भावना उस समय के समाज में काम कर रही थी और आज भी यह भावना थोडी बहुत मात्रा में वर्तमान है।

स्त्री और पुरुष अपनी शारीरिक और मानसिक भिन्न बनावट के कारण परस्पर आकृष्ट होते हैं। साथ ही, विपरीत लिंग होने से अपने - अपने अहम् के कारण टकराते भी हैं। इस आकर्षण - विकर्षण के बीच उनको अपने बीच सामंजस्य की स्थापना के लिए साधना करनी पड़ती है। यह साधना संयम और अर्पण के निरन्तर अभ्यास से फलीभूत होती है। स्त्री-पुरुष के बीच जो स्वाभाविक आकर्षण है, उसे प्रेम की संज्ञा दी जाती है। यह आकर्षण का भाव चंचल होने के कारण मर्यादा की सीमा में रहना नही जानता है। इसको मर्यादित और संयमित रखने के लिए विवाह की व्यवस्था की गई है। विवाह आज के सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक है।

विवाह को मात्र भोगमूलक संस्कार नही मानना चाहिए। अपितु इस संस्कार सूत्र में बंधने के बाद पति-पत्नी से यह अपेक्षा की जाती है कि वे सहधर्मी और सहकर्मी होकर परस्पर कर्तव्यनिष्ठ और अर्पण की भावनासे मिलकर रहेंगे। इस आपसी सहयोग के आधारपर ही उनका उत्कर्ष संभव है। इस विषय में जैनेंद्रजी के विचार - ' अभी विवाह स्त्री-पुरुष के आपसी अधिकार-भाव का नाम

---

१ ' डॉ. बिंदू अग्रवाल ' - ' हिंदी उपन्यासमें नारी चित्रण ' - - पृ. ८३
प्रकाशन - राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली-६,
संस्करण - १९६८

हैं। उससे सर्वथा उलटे जब भाव सेवा और अर्पण का ही हो जायेगा तो उसे यज्ञ कहेंगी। यज्ञ में भोग का सुख नहीं हैं, त्याग का ही आनंद हैं। विवाह के आधार को भोगमूलक से त्याग मूलक बनाना हैं। मैं मानता हूँ कि विवाह का स्वाभाविक विकास उसी ओर हैं। पति-पत्नी परस्पर भोग्य की जगह सेव्य या साध्य बनते हैं। तो विवाह ऐसे आध्यात्मिक उत्कर्षों का साधन बन आता हैं। अभी तो वह मानो सांसारिक प्रपंच विस्तार को केन्द्र मात्र हैं।"[१]

विवाह स्त्री-पुरुष के अन्तःकरण से स्वीकृत परस्पर हार्दिक संबंध हैं। उस अवस्था में संतति के पालन-पोषण का दायित्व स्वभावत: दोनों पर बराबर आता हैं। इसमें किसी प्रकार की बेबसी का भाव उनके मन में नहीं रहता अपितु विशुध्द त्याग और कर्तव्य का भाव रहता हैं।

जैनेंद्रकुमार के उपन्यासों में विवाहपूर्व प्रेम और विवाहोत्तर प्रेम दिखाई देता हैं। वस्तुत: जैनेंद्रजी ने इन दोनों स्थितियों को मूलत: मानवीय स्थिति में देखने का प्रयास नहीं किया हैं। `परख` उपन्यास में सत्यधन और गरिमा का विवाहित जीवन व्यतीत होता हैं। सत्यधन से कुछ पढने के लिए समय-समय पर कट्टो आती हैं। तब कट्टो सत्यधन के बारेमें विवाह के लिए सोचती हैं। सत्यधन के प्रति उसका प्यार हो जाता हैं।

लेकिन सत्यधन को बिहारी के पिता अपनी बेटी गरिमा के विवाह के बारेमें चाहते हैं, तब सत्यधन गरिमा के साथ विवाह करने के लिए तैयार होता हैं। गरिमा को चाहने लगता हैं। किंतु कट्टो के प्रति सहानुभूति की आदर्श धारणा ने अकस्मात उसे विकल बना दिया हैं। सत्यधन गरिमा से विवाह करने से पूर्व कट्टो का भावी जीवन निश्चित देखना चाहता हैं। सत्यधन का गरिमा के साथ विवाह करने का निश्चय अर्थ-लाभ हैं। तथा पारिवारिक सम्मान की संभावित उपलब्धि से पुष्ट हैं।

---

१ 'डॉ. बलराज सिंहराणा' - 'उपन्यासकार जैनेंद्रकुमार के पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' - पृ. १८-१९
प्रकाशन - संजय प्रकाशन, संस्करण - १९७८

सत्यधन के फिसलते कदम देखकर कट्टो की उत्सर्ग -भावना पराकाष्ठा पर जा पहुँचती हैं। कट्टो बिहारी का आश्रम पा कर तो जैसे वह आकाश ही छूने लगी हैं। कट्टो सत्यधन से विवाह के बारे में कह रही हैं कि सबसे पहले मैं तुम्हारा विवाह देखना चाहती हूँ। कट्टो सत्यधन से कहती हैं --`जो कुछ भी तुम चाहते हो सब में कट्टो की खूब राय हैं। कट्टो भी उसे खूब चाहती हैं। उसका पूरा-पूरा विश्वास रखो। तुम्हारी खुशी में उसकी खुशी हैं। तुम्हारे सोच में उसका मौत हैं। अपने कामों में कट्टो की गिनती मत करो - वह गिनने लायक नहीं हैं। उसकी खुशी तुम में शामिल हैं। अब तुम ब्याह करना चाहते हो, कट्टो तुम्हारा सबसे पहले तुम्हारा ब्याह चाहती हैं। ... तुम तो कट्टो के मालिक हो - फिर उसकी फिक्र क्यों करते हो ....

सत्यधन अपने भावी ससुर का पत्र पाकर उसकी ओर विवाह से स्थिति की उपेक्षा को देखकर एकदम विचलित हो उठता हैं। सत्यधन मन का कच्चा हैं। ससुराल के पत्र में विवाह के संबंध `भगवद्दयाल' सत्यधन को अपनी बेटी गरिमा के बारे में मत सोचो आपका प्यार कट्टो से हैं,तो आप कट्टो से विवाह कर सकते हो। भगवद्दयाल पत्र में लिखते हैं गरिमा के लिए दूसरा वर ढूंढता हूँ। तू उसकी फिक्र मत कर। और आगे चलकर वे अपने पत्र में विवाह का महत्व भी लिखते हैं -- `अब विवाह क्या हैं? विवाह बिल्कुल एक सामाजिक समस्या हैं, सामाजिक तथ्य हैं। तुम भूलते हो,अगर तुम उसे और कुछ समझो। उन कुछ उत्तरदायित्वों से, जो जीवन के साथ बंधे हैं, उऋण होने के लिए यह विवाह का विधान हैं। दुनिया में क्या करना हैं, उसकी दृष्टि से लाभ पूर्ण क्या होगा, क्या नहीं, कुटुम्बियों की प्रसन्नता किस ओर हैं और अपना स्वार्थ किस ओर हैं --- ये सभी बातें विवाह के

---

१ 'जैनेंद्र' -'परख'- - पृ.९७-९८

हिंदी ग्रंथ - रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड,
गिरगाँव,बम्बई-४, दिल्ली-६,
संस्करण - १९४१

प्रश्न में संश्लिष्ट है। ` स्वार्थ ` शब्द से घबडाओं नहीं। देखोगे तो परमार्थ शुध्द स्वार्थ है। लेकिन मैं कहता हूं कि शब्द से मत डरो, तथा देखो और वास्तविकताको पहचानों।`[1]

सत्यधन गरिमा के साथ विवाह करने के लिए लाभ-हानि है। इसलिए वह तुरंत कट्टो के बारेमें रक्षा के बोझ का दिखावा करते हुए भी ` अब उसे हठात यह सूझ रहा है कि इधर क्या लाभ - हानि है और उधर कितनी है, यह पक्ष देख भाल लेने की जरूरत है। इस आमद-खर्च की हिसाबी सूक्ष्म-बुध्दि पर चढकर जब वह तौलने बैठता है तो देखता है, कट्टो की ओर आमद नहीं, खर्च-ही खर्च है। दूसरी तरफ आमदनी की कई मदें है। खर्च लगभग है ही नहीं। प्रतिष्ठा बढेगी पैसा आएगा, सुख भी मिलेगा और भी बहुत कुछ। दूसरी तरफ सब-कुछ खर्च होगा - मिलेगा क्या ?`[2]

गरिमा का विवाह सत्यधन से निश्चित हो गया तो, सत्यधन से विवाह होगा, यह बात तो जैसे उसके ध्यान में है हा नहीं, मैं जीती हूं कट्टो आखिर हार गई - इसी की नशाला खुशी में खुश है।`

कट्टो बिहारी की ओर विवाह करने के लिए प्रवृत्त हुई है। यदि यह संम्भव है तो क्यों कट्टो और बिहारी इसी तरह पति-पत्नी के नाते में बंधकर नहीं चल सकते ? कट्टो अपने खुद विवाह के बारेमें बिहारी को प्रवृत्त कर रही है और कहती है` बिहारी बाबू क्या यह नहीं हो सकता ? क्या हम भी दो ऐसे नहीं हो सकते ? दूर, फिर भी बिलकुल पास। अलग, फिर भी अभिन्न। दो, फिर भी एक। एक ही उद्देश्य, एक ही जीवन-लक्ष्य में पिरोये हुए ?`[3]

१ `जैनेंद्रकुमार` - `परख` - - पृ.९०
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई-४,
दिल्ली-६, संस्करण - १९४१

२ `मनमोहनसहगल` - `उपन्यासकार जैनेंद्रकुमार मूल्यांकन और मूल्यांकन` - पृ.१००
साहित्य भारती, संस्करण - १९७६

३ `जैनेंद्रकुमार` - `परख` - - पृ.१०३
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई-४,
दिल्ली-६, संस्करण - १९४१

कट्टो और बिहारी विवाह करने के लिए, एक आदर्श की चरम सीमा को छूता हुआ, अतीव कठिण यज्ञ संपन्न करने के लिए वे दोनों प्रतिज्ञा बध्द हो गए। इनके विवाह के लिए एक विचित्र वरण, जिसमें शहनाई का ध्वनि नहीं, ढोल का तुमुल नहीं, सखियों की चहक नहीं, मित्रों - परिजनों के कहकहे नहीं - बस दोनों (बिहारी और कट्टो) ने जीवन के महत् आदर्शों की सहज स्वीकृति हेतु एक - दूसरे का हो जाना स्वीकार कर लिया। कट्टो ने स्मृति-चिन्ह रुप में बिहारी को वर माला पहनाई। वरमाला भी गाँधी - युग की देन है, 'उसने एक आसन पर बैठकर झटसे चर्खे पर सूत काता, हल्दी के रंग में उसे रंगकर माला बनाई। दोनों हाथों से वरमाला के रुप में पकड़ा, धोती का छोर जरा आगे को किया और एक खट्टा-मीठी हँसी-हँसके बिहारी के गले में डाल दिया। फिर एक नमस्कार किया, चरणों में हाथ लगा और फिर उस हाथ को अपने माथे से छुआ लिया।'[१]

कट्टो ने जैसे दिव्यता प्राप्त कर ली है। बिहारी और कट्टो ने विवाह के बाद प्रतिज्ञा की थी कि वे यथावत् स्थिति में रहेंगे - दोनों अपनी नहीं, दूसरो की सोचेंगे। कट्टो को बिहारी के साथ अधिक भी विवाह से भिन्न तथा सत्साधन के लिए समर्पित जीवन जीने को वह क्यों बाध्य कर रहा है ? विवाह एक टिकनेवाला सत्य दायित्व का अंश है। प्रेम को उसमें दखल देना ठीक नहीं होगा।

विवाह जीवन के अनेक समझौतों का मूल है। मन को मारना, झुकना, छोटा बनना, दूसरों की सुविधा का ध्यान रखना और निभाना आदि सभी तत्व प्रेम के लिए न हो, विवाह में जीवन का संतोष-मात्र प्राप्त करने के लिए भी अनिवार्य है। सामाजिक दायित्वों से उऋण होने के लिए ही विवाह का विधान है। समाज की इकाई, परिवार की नींव इसी पर स्थित है। एक आवेश के लिए इस सम्पूर्ण दायित्व को झटक देना निर्ममता के साथ - साथ अपने को किसी गर्त में गिरी

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'परख' - - पृ. १०६
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई-४,
दिल्ली-६, संस्करण - १९४१

लेने सरीखा व्यवहार होगा । सत्यधन विवाह का विश्लेषण करता है, 'प्रेम जीवन को बहलाने की वस्तु तो बन सकती है, लेकिन जीवन उसके स्वाहा नहीं किया जा सकता । जीवन तो दायित्व है,और विवाह वास्तव में उसकी पूर्णता की राह - उसकी शर्त । इस दायित्व से एक खयाल एक भावना में बहकर कैसे छुट्टी पाई जा सकती है ? प्रेम को इस दायित्व पूर्ण विवाह में क्यों दखल देने दिया जाय ? जीवन प्रेम से ज्यादे महत्व की - ज्यादे ऊँची और पवित्र चीज है । प्रेम, जो अन्त में केवल एक आवेश - एक भाव है, उस पर जीवन कैसे निछावर कर दिया जाय ?' [१]

जैनेंद्रकुमार जी के 'सुनीता' उपन्यास में सुनीता की चेतना अर्थ के प्रति उदासीन है तथा काम के प्रति सजग है । जैनेंद्रकुमार काम और प्रेम के साहित्यकार है । 'सुनीता' का काम विवाह को निबाहने योग्य संस्था मानते हुए भी प्रेम को अधिक महत्व देता है । 'सुनीता' ही नहीं अपितु जैनेंद्रजी के संपूर्ण उपन्यास साहित्य को केन्द्रीय संवेदना प्रेम ही है । जैनेंद्रजी की दृष्टि में 'पत्नी सामाजिकता है और प्रियसी दिव्यत्ता है । वे यह मानते हैं कि प्रेम गगन बिहारी है, मुक्त होकर ही वह है ।' [२]

जैनेंद्रजी के अनुसार प्रेम बाँधकर भी खोलता है । इसके विपरीत विवाह की आबध्दता में केवल निर्वाह की बात ही रह जाती है । प्राय: ईर्ष्या के पहले में रखकर ही विवाह की सुरक्षा की जाती है । ऐसी स्थिति में घर और बाहर की समस्या खडी हो जाती है ।

समाज शास्त्र के अनुसार दो संबंधित व्यक्तियों का युग्मक समाज की

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'परख' - - पृ.९२
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर - प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई-४
दिल्ली-६, संस्करण - १९४१

२ 'डॉ.चन्द्रभानु सोनवणे' - 'हिंदी उपन्यास विविध आयाम' - - पृ.४
प्रकाशक - पुस्तक संस्थान,कानपुर-२
संस्करण - १९७७

सबसे छोटी इकाई होती है। इस प्रकार की इकाइयों में युवक और युवक का महत्व सबसे अधिक है। यह इकाई सृजनशील होने के कारण सामाजिक विकास एवं नैरन्तर्य के लिए विशेष रूप से उत्तरदायी है। इस इकाई की स्थिरता सामाजिक स्वास्थ्य एवं शांति के लिए आवश्यक है। इस स्थिरता की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए विवाह संस्था को विकसित किया गया है। स्वस्थ विवाह संस्था के कारण 'भूत का डेरा', 'घर' के अपने पन के कारण स्वर्ग के समान आनंददायक बन जाता है। किंतु विवाह संस्था की स्थिरता के लिए अगर पति और पत्नी के युगल में से कोई एक व्यक्ति को घर की चार दिवारी की घुटन अनुभव करे, तो विवाह संस्था घर को निरानंद बना डालती है। बाहर के सहज संपर्क के अभाव में श्रीकांत और सुनीता का दाम्पत्य जीवन घर में घिरा रहने के कारण जडता से आच्छन्न हो गया था। इसी कारण एक ओर श्रीकांत यह सोचने लगा था कि उसे 'गिरस्तिन पत्नी' के अतिरिक्त कुछ और भी चाहिए तथा दूसरी ओर वैचित्र्य के प्रति जिज्ञासु 'सुनीता विश्व वैचित्र्य के लिए आतुर हो उठती है। उनका मन पति के यमनियमादि के पालन करने की प्रवृत्ति के विरुध्द उद्विग्न हो उठती है। वह सोचने लगती है कि वह अपने पति को अपने में बाँधकर क्यों नहीं रख पाती।

जैनेंद्रकुमार के उपन्यासों में विवाह के संदर्भ को देखकर ऐसा लगता है कि विवाह के पश्चात भी सच्चे दिल से पति-पत्नी एक दूसरे के नहीं हो पाते केवल दिखावा ही अधिक रहता है। विवाह के पश्चात भी पत्नी किसी पर- पुरुष से प्रेम कर बैठती है। जैनेंद्रजी के उपन्यासों के नारी पात्रों के लिए इसमें कुछ भी बुराई नहीं थी।

अनमेल विवाह --

' हिंदू समाज में कन्या का विवाह धार्मिक दृष्टि से अनिवार्य माना गया है। इस लिए माँ-बाप किसी न किसी प्रकार अपनी लड़की को विवाहित देखना चाहते हैं। ' हिंदू समाज में जन्म होने के अभिशाप की मुक्ति है विवाह।' [१]

यही भावना उस समय के समाज में काम कर रही थी और आज भी यह भावना थोडी बहुत मात्रा में वर्तमान है। इसीलिए समाज में अनमेल विवाह की घटना साधारण बात है। हिंदी उपन्यासों में अनमेल विवाह के कई रुपों का चित्रण मिलता है।

(१) कहीं सात से दस वर्ष की बालिका का विवाह किसी बूढ़े से होता है।

(२) कहीं वयस्क कन्या का विवाह निरेबालकसे हो जाता है।

(३) कहीं कहीं दाम्पत्य जीवन में स्वभावगत विभिन्नता को भी अनमेल विवाह की कोटि में माना गया है।

सभी प्रकार के अनमेल विवाहों का परिणाम दु:खद होता है। किंतु इस युग के उपन्यासकारों की दृष्टि मूलत: अनमेल विवाह के प्रथम रुप पर ही केन्द्रित है।

इस समय समाज में बाल-विवाह एवं दहेज-प्रथा होने के कारण अनमेल विवाह की समस्या उठ खडी हुई थी।

जैनेंद्रजी के उपन्यास त्यागपत्र में प्रेम और विवाह ने व्यक्ति की समस्या के रुप में व्यापक स्थान पाया है। त्यागपत्र की मूल संवेदना व्यक्ति का नैतिक मान्यताओं और सामाजिक विधि-निषेधों के द्वन्द्व के बीच से प्रकट होती है।

---

१ 'बिंदू अग्रवाल' - 'हिंदी उपन्यास में नारी चित्रण' - - पृ. ८३
प्रकाशक - राधाकृष्ण प्रकाशन,
दरियागंज, दिल्ली-६,
संस्करण - १९६८

मृणाल को व्यक्ति पात्र के रूप में नारी-जीवन का प्रतीक मानकर नैतिकता की अपनी एक कसौटी लेखक ने उपन्यास में तैयार की है ।

त्यागपत्र में नर-नारी के विवाह पूर्व सम्बन्ध का उल्लेख है । यह विवाह पूर्व का सहजाकर्षण ही मृणाल के परिवार और दाम्पत्य जीवन को विनष्ट करने का कारण बन जाता है । विवाह-पूर्व प्रेम को स्वीकृति देते हुए भी जैनेंद्रजी उसकी पारिवारिक सामाजिक अनुपयोगिता से बेखबर नहीं हैं । त्यागपत्र में विवाह और नैतिकता पर प्रमोद और मृणाल दोनों के जरिए विचार कराया गया है । अनमेल विवाह के दुष्परिणाम को चित्रित करते हुए इसमें विवाह की अनिवार्यता से इन्कार नहीं किया गया है । यह केवल व्यक्ति-व्यक्ति के बीच का बन्धन नहीं है अपितु सामाजिक दायित्व के निर्वाह का भी माध्यम है । इसी कारण मृणाल ने एक बार भी विवाह संस्था को अनावश्यक नहीं माना । उसने यदि इस संस्था को अनुपयुक्त या हानिकर समझा होता तो वह अवश्य ही प्रमोद को विवाह करने से रोकती । अपने या अपने जैसी स्त्रियों के दुर्भाग्यपूर्ण दाम्पत्य का दोष वह संस्था या व्यवस्था को न देकर भाग्य को देती है ।

प्रमोद विवाह को भावुकता और व्यवस्था का प्रश्न बनाते हुए वैवाहिक सम्बंधों के टूटने को श्रेयस्कर नहीं मानता - 'विवाह की ग्रंथि दो के बीच की ग्रन्थि नहीं है, वह समाज के बीच की भी है । चाहने से ही वह क्या टूटती है ? विवाह भावुकता का प्रश्न नहीं, व्यवस्था का प्रश्न है, वह प्रश्न क्या यों टाले टल सकता है ? वह गाँठ है जो बँधी कि खुल नहीं सकती, टूटे तो टूट भले ही जाए, लेकिन टूटना क्या किसका श्रेयस्कर है ?' १

---

१ 'जैनेंद्रकुमार - 'त्यागपत्र' - पूर्वोदय प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली-२ संस्करण - १९७१ - पृ. २४

मृणाल दर्द की इस निरन्तर प्रवाहमान स्रोतस्विनी का एक गंभीर कारण मृणाल का अनमेल विवाह भी था । यह सही है कि मृणाल के भाई-भाभि को मृणाल का शीला के भाई से संबंध बढ़ाना पसन्द नहीं था - किंतु विवाह की शीघ्रता में मृणाल के योग्य वर का खोज के दायित्व से तो वे मुक्त नहीं हो जाते । उन्होंने क्यों किसी युवा वर की अपेक्षा उस अधिक आयु के दूहाजू वर के साथ कोमल कलिका - सी मृणाल को बांध दिया ? यदि मृणाल के माता-पिता होते तो क्या वे किसी भी मोल पर अपनी बेटी को ऐसे नरक में ढकेलने को तप्तर होते ? भाभि व्दारा कठोर नियंत्रण और फिर इस प्रकार के बेमेल विवाह ने मृणाल के मन में भाई-भाभि के लिए परायापन पैदा कर दिया । वह भाई को स्नेह-सम्बोधन न कर 'बाबूजी ' तथा भाभी को ' प्रमोद की माँ ' के रूप में पहचानने लगी । अनमेल विवाह की कसक उसके पति-गृह को स्वर्ग बनाने में व्यक्त है -- ' वह तो स्वर्ग ही होता है, जिसके लिए ऐसा नहीं है वह अभागिनी है ।'[१]

इससे उभरनेवाला परायापन कितना कटु है ' प्रमोद, सच्ची-सच्ची कहूँ तो मैं ही पराई हो गई हूँ । तुम सब लोगों के लिए मैं पराई हूँ । तेरी माँ ने मुझे धक्का देकर पराया बना दिया है। पर मुझे जहाँ भेज दिया है, प्रमोद, मेरा मन वहाँ का नहीं है ।'[२] अंतिम वाक्य में दर्द की सघनता दृष्टव्य है ।

मृणाल, प्रमोद को पति के महत्व को बताते समय स्पष्ट कर दिया है ' स्त्री जब तक ससुराल की है, तब तक मैके की है ।'[3] शरीर देकर भी वह आत्मासे

---

१ 'जैनेंद्रकुमार ' - 'त्यागपत्र ' - - पृ. ३५
पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली-२
संस्करण - १९७९

२ 'जैनेंद्रकुमार ' - 'त्यागपत्र ' - - पृ. २१
पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली-२
संस्करण - १९७९

3 'जैनेंद्रकुमार ' -- 'वही ' -- - पृ. ५८

पवित्र हैं। ऐसे वैवाहिक जीवन की चर्चा मृणाल द्वारा किया।

जैनेंद्रकुमार के नारी जीवन में अनमेल-विवाह की दुरान्तिकी और नैतिकता के आधे-अधूरे प्रयत्नों को सामने रखना जितना आवश्यक है उतना ही नवीन सम्बधों और मूल्यों की स्थापना करना भी बुआ-भतीजे के सम्बध को जिस तरह 'त्यागपत्र' में रेखांकित किया गया है। वह निःसंदेह समाज में स्वीकृत रूप से भिन्न है।

'सुखदा' उपन्यास में सुखदा हीनता की भावना बढ़ने का कारण उसके विवाह-पूर्व की कल्पनाओं एवं विवाहोत्तर यथार्थता में वास्तविक अन्तर की अनुभूति थी। कुमारी के रूप में सुखदा ने सोचा था कि 'विवाह जहाँ होगा उनकी आमदनी सात-आठ सौ रुपये होनी चाहिए। मोटर तो पास होना अनिवार्य ही है।'[१] उसने शायद विलायत जाने को उद्यत किसी युवक को मन-ही-मन वरण भी कर लिया था, किन्तु वह बात रूपायित न हो सकी। यथार्थ जीवन में विवाह हुआ एक ऐसे व्यक्ति से जो केवल डेढ सौ रुपल्ली मासिक पाता था। यह सही है कि उस व्यक्ति ने 'सुखदा' को निश्छल आदर, स्नेह और पूर्ण विश्वास से स्वीकार किया किंतु महत्वाकांक्षिणी सुखदा के लिए इतना ही तो पर्याप्त न था। उसे गृहस्थी में अनेक अभाव कचोटने लगे, स्वामी की मित व्ययिता की बातें उसे खटकने लगी और वह स्वयं ऊँचाई की ओर देखती हुई उन्नति की आशा से जीवन को अपने ढंग से चलाने का प्रयत्न करने लगी।

सुखदा विवाह होने पर संतुष्ट नहीं है। सुखदा में क्षोभपूर्ण हीनता उत्पन्न होती है। वह अपने आप में निर्णय नहीं कर पाती कि उसे अनुवर्तिनी बनना है, या पति को अपना अनुवर्ती बनना है। इसी उधेड़-बुन में उस पर बाहर

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' -'सुखदा'- - पृ.१
प्रकाशक : पूर्वोदय प्रकाशन,
दरियागंज, नई दिल्ली
संस्करण - १९६०

का आघात होता है और एक अनचाही तुलना के कारण वह अपने स्वामी को हीन समझने लगती है। पर-पुरुष से प्रभावित हुई वह पति से विश्वासघात - करती उसके अडिग विश्वास को झकझोरती पतनोन्मुखी होकर भी अपनी श्रेष्ठता का मिथ्यापन स्थापित करने से नहीं चूकती। अंत में सुखदा पति पर नाराज हो पति का घर छोड़कर माँ के पास वह चली जाना श्रेयस्कर समझती है। वहाँ उसे पति की 'तुच्छता' का सामना नहीं होगा।

स्वयं सुखदा हीन, अयोग्य होने पर भी दूसरे को ओछा समझने एवं निरन्तर अपने को दूसरे से श्रेष्ठ सिध्द करने की वृत्ति श्रेष्ठता ग्रंथि के नाम से भी जानी जा सकती है।

'कल्याणी' उपन्यास डॅा. कल्याणी असरानी विदेशी शिक्षा प्राप्त विदुषी महिला है। उसके जीवन की सबसे बड़ी तिक्तता उसका पुरुष है। डॅा. असरानी। विवाह में कल्याणी को प्राप्त करने के दृढ़ संकल्प को सोने में छिपाए वह युध्द और प्रेम में उपलब्धि के साधनों को जाँचना अनिवार्य नहीं समझता। बस, कल्याणी के कष्ट का बीज यहीं वपन है। डॅाक्टर असरानी कल्यानी के साथ विवाह करने के लिए, उसके विरुध्द मिथ्या प्रवाद खड़े करने से भी संकोच नहीं करते और उन्ही प्रवादों में घिरकर लोक-दृष्टि में पतित कल्याणी को डॅा. असरानी सरीखे अस्वस्थ - चित व्यक्ति से विवाह करना पड़ा था।

सम्भवत: वह उस अतीत को विस्मृत कर अब अपने प्राप्य में ही संतुष्ट रहने के अनेक संकल्प तो करती है, किंतु पुरुष के 'कुव्यवहार' की टीस अनचाहे हो सम्य सिंचित समंजन को झकझोर देती है। तभी तो प्रथम दर्शन पर कवि 'प्रबल' की दृष्टि में 'प्रकृति' में काव्य रखनेवाली महिला' एवं श्रीधर की समझानुसार 'परिष्कृत स्त्रीत्व की स्वामिनी महिला' वह 'कल्याणी' उपन्यास में अपने मानसिक संघर्ष से पार नहीं पा सकी और काव्यमयी प्रकृति अथवा परिष्कृत नारीत्व का प्रमाण नहीं जुटा सकी। जैनेंद्रजी ने कल्याणी का विवाह होने पर भी कल्याणी

सुखी नहीं है। कल्याणी कमानेवाली नारी होते हुए भी पति से उसको जो चाहे वही किम्मत, स्थान मिलता नहीं।

जैनेंद्रकुमार अपने नारी प्रधान उपन्यास में विवाह से पूर्व इस तरह के प्रेम स्थितियों में जैनेंद्रजी की विशेष रुचि नहीं है। वह उसे एक ओर कथा की तीव्रता योगदान के लिये उसे साधन रूप में प्रयोग करते हैं तथा दूसरी ओर विवाह से पूर्व उस प्रेमी को उस त्रिभुज का रेखा के रूप में देखते हैं। जहाँ पति और पत्नी के प्रेम की सच्ची परीक्षा होती है।

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

SHIVAJI UNIVERSITY
LIBRARY
KOLHAPUR

(आ) पत्नी तथा अनैतिकता ----

जैनेंद्रजी के औपन्यासिक नारी पात्रों का चरित्रावलोकन करने पर ज्ञात होता है कि उनके नारी-पात्र अत्यंत स्वतंत्र विचारों के हैं किंतु फिर भी उनमें परम्परित आदर्श पत्नीत्व की भावना विद्यमान है, वैसे जैनेंद्रजी की व्यक्त मानसिकता 'पत्नी घर में, प्रेयसी मन में व्यजित है।'[१] जैनेंद्रजी की मान्यता है कि पत्नी घर की स्वामिनी होती है अत: उसे बाह्य संघर्ष से बचना चाहिए।

जैनेंद्रजी ने अपने औपन्यासिक धरातल पर नारी के पत्नीत्व रूप की अपेक्षा अनैतिकता को अधिक महत्व प्रदान किया है। उनका विचार है कि आदमी सिर्फ आदमी नहीं है। दिव्यता भी है, पशुत्व भी है। प्रेम जो है वह आदमी की दिव्यता से जुड़ा सम्बन्ध होता है और प्रेयसी उसी दिव्यता का प्रतिरूप होती है। पत्नी सामाजिकता है। प्रेयसी दिव्यता है। ईश्वरत्व के दर्शन प्रेयसी में प्राप्त होते हैं।'[२]

'परख' उपन्यास की कट्टो सत्यधन से प्रेम करती है और उस प्रेम की परिणति विवाह में चाहती है किंतु सत्यधन का विवाह होता है गरिमा से। कट्टो को अपने प्रेम का प्रतिफल मिलता है। बिहारी के साथ आत्मिक वैवाहिक सम्बन्ध आवश्यकता पड़ने पर सत्यधन को चालीस हजार रुपये देकर वह अपने गहरा प्रेयसीत्व का प्रदर्शन करती है। कट्टो प्रेमी द्वारा सहज रूप में इसका उल्लेख भले ही नहीं करती, पर उसका दर्पण के सम्मुख श्रृंगार कर अभिस्वीकार के रूप में प्रस्तुत होना इसी मानसिकताका परिचायक है। कट्टो पुनर्विवाह तो करती है, किन्तु वह

---

१ 'डॉ. सावित्री मठपाल' - 'जैनेंद्रकुमार के उपन्यासों में नारी पात्र' - पृ. १६७

२ 'डॉ. सावित्री मठपाल' - 'जैनेंद्रकुमार के उपन्यासों में नारी-पात्र' - पृ. १६८

शारीरिक न होकर आत्मिक हैं।

सत्यधन कटरों में यद्यपि दोनों पात्रों का आरम्भ आदर्श से हुआ था।

' त्यागपत्र' की मृणाल भी अपने प्रणय बन्धन की असफलता के कारण अनमेल विवाह की विकृति को सहती हुई, अंतत: पतन के गर्त में जा गिरती हैं। मृणाल के पति का संदेह बढ़ता चला जाता हैं। अन्तत: मृणाल को पति त्याग देते हैं। परित्यक्ता मृणाल एक कोयलेवाले के साथ दाम्पत्य स्थापित कर नगर की एक निम्न आबादी में रहने लगती हैं और पुन: गर्भवती होती हैं।

सुखदा उपन्यास की नायिका सुखदा भी क्रांतिकारी लाल के प्रेमपाश में आबध्द होकर असफल प्रेयसीत्व के लिए जिंदगी के अन्तिम दिन सैनिटोरियम में व्यतीत करती हैं। "घर में बाहर का" दूसरा प्रवेश लाल के आगमन से होता हैं। लाल एक ऐसा पात्र हैं, जिसके स्वच्छन्द व्यवहार, मुक्त आचरण, सबल पौरुष और हरिदा का विश्वास पात्र होने के कारण स्वयं सुखदा उसकी ओर धीरे-धीरे आकर्षित होने लगती हैं। वह भूल जाती हैं कि वह किसी की विवाहित पत्नी भी हैं। लाल उसे बाहों में भरता, कंधों से थामता और अन्य आपत्ति जनक चेष्टाएँ करता हैं, किंतु किसी रहस्यमय मोह के कारण वहउसका विरोध नहीं कर पाती। कान्त के सामने भी लाल का मुक्त व्यवहार सुखदा को संकुचित नहीं करता और न ही पति के व्दारा की जानेवाली लाल और सुखदा के एक ही कक्ष में ठहरने की व्यवस्था का विरोध वह कर सकी। परिणामत: पति दूर हटता गया और लाल निकट आता गया। पति के अधिकार से छूट भागने की लालसा उसमें उभरने लगी। इसी लिए पहले उसने विलास भवन में जाकर रहने की योजना की।

सुखदा की मुलाकत लाल से होती हैं। यहाँ लाल से उसकी मुलाकात पति की ईर्ष्या को जगा देती हैं। एक ओर काम अभुक्ति, दूसरे ईर्ष्या, तीसरी और लाल के

माध्यम से अतृप्त कामनाओंकी पूर्ति की आशा और बाँधे बहिर्मुखी स्वच्छन्द जीवन का मोह - एक ही समय ये चारों प्रवृत्तियाँ सुखदा के जीवन को द्वन्द्व ग्रस्त बना देती हैं। वह गृहिणी की समस्याओं और अड़चनों को समझती है, अपनी सामाजिक बाधाओं और क्रान्तिकारी शिविर में वह सही जाती है, गिनी नहीं जाती की चेतना से भी वह समझ है फिर भी कुछ है जो उसे निरन्तर भीतर से बाहर की ओर खींच रहा है, जिसका संकेत उसकी आत्म-स्वीकृति -- 'इस बीच जाने किस एक अनिर्दिष्ट शक्ति से मैं पति से स्वाधीन होती चली गई।'[1] तथा उसकी घोषणा 'घर की दासी जो स्त्री बन सकती है, वह मैं नहीं हूं।'[2] में मिलता है। यह कुछ आत्म द्वन्द्व से जूझता हुआ उसका अहम् ही है। तात्पर्य यह कि सुखदा का अहम् ही उसकी असमान्यता तथा अन्तर्द्वन्द्व का आधार है। जो वह चाहती है, उसकी उसे चेतना नहीं, उपलब्धि भी नहीं, प्राप्य से वह असंतुष्ट है - यही उसकी मानसिक अतृप्ति है। हमारी दृष्टि में वह एक ही समय अनेक मनोविकारों से पीड़ित है। पति के प्रति उसका शील क्व और क्यों क्रोध और घृणा में बदल जाता है, इसके लिए उसे स्वयं खेद है। उसकी यही रुग्णता (Morbidity) उसे एक असंतुलित-सा व्यक्तित्व बना डालती है।

'सुखदा' पत्नीत्व एवं प्रेयसीत्व की द्वन्द्वात्मक मानसिकता से आक्रान्त है। सम्पन्न परिवार की लड़की सुखदा का विवाह अल्प वेतन पाने वाले कान्त से होता है। तो उसके मन में खिन्नता उत्पन्न होती है और उसका जीवन असंतोषमय हो जाता है। 'गिरस्ती चलती थी, बच्चे को प्रेम से पालती थी।'[3] अतः स्वयं

१ 'जैनेंद्रकुमार'-'सुखदा'- - पृ. २२
प्रकाशक - पूर्वोदय प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली-२
संस्करण - १९६०

२ 'जैनेंद्रकुमार'-'सुखदा'- - पृ. २४
पूर्वोदय प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली-२
संस्करण - १६०

३ 'जैनेंद्रकुमार'-'सुखदा'- - पृ. ११
पूर्वोदय प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली-२
संस्करण - १९६०

ही पति - गृह में अपनी मन की कल्पनाओं को तड़पता देखकर मानसिक सन्तोष का अन्य पथ खोजता है। सुखदा पति की आर्थिक स्थिति निरुत्साहपूर्ण अन्तर्मुखता और अपनी अनुचित स्वतंत्रता के प्रति कान्त के मौन आदि से चिढ़ती है। पतिगृह के अभाव उसे लाल के प्रति आकर्षित करते हैं और वह समय-समय पर पति का तिरस्कार करने लगती है। प्रेमी के आकर्षण में खिंची वह पति से टूट जाना चाहती है किंतु उसके परम्परित संस्कार उसे ऐसा नहीं करने देते। फलत: वह पतीत्व एवं अनैतिकता के द्वन्द्व में उलझी रहती है।

'सुनीता' उपन्यास में सुनीता श्रीकांत की पत्नी है। पति की आज्ञा के कारण वह अनैतिकता की ओर झुकी है। लाहौर से श्रीकांत ने पत्र में लिखा था --- 'सुनीता, मुझे उसकी भीतर की प्रकृति की बात नहीं मालूम, तो भी तुझसे चाहता हूँ कि तुम इन दिनों के लिए अपने को उसकी इच्छा के नीचे छोड़ देना। यह समझना कि मैं नहीं हूँ, तुम हो और तुम्हारे लिए काम्य कर्म कोई नहीं है। इस भाँति निषिध्द कर्म भी कोई नहीं रहेगा।.... तुम उसकी इस वैरागी वृत्ति को किसी तरह कम कर सको, उसमें कहीं बँधकर बैठने की चाह उपजा सको, तो शुभ हो।' [१]

ऐसी बातें जब कोई पति अपनी पत्नी को लिख रहा हो और इन्हें सुन-सुन तथा पढ़-पढ़कर सतीत्व में उसका विश्वास खिसकने-सा लगा हो, तो क्या उसे अपने जीवन-मूल्यों के पतित होने पर भयानक पीड़ा होने लगना अस्वाभाविक होगा ? पति का आदेश मानती है तो पाप की भागिनी बनती है, नहीं मानती, तो पापिष्ठा कहलाती है -- क्या करे वह ? हरि की बात मानकर जंगल में क्रान्तिकारियों के अड्डे तक जाने से पूर्व भी एक बार वह अपने पति में निष्ठा दृढ़ कर लेना चाहती है, अपने कमरे में आकर उसने श्रीकान्त के चित्र की सहायता से अपने को विश्वास से

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'सुनीता' - - पृ. १८७
पूर्वोदय प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली-२
संस्करण - १९६०

भरपूर भरा । विश्वास से भरी समन्दर के जल पर वह उतराती ही रहे, उस विश्वास में कहीं रंध्र न रहे कि जिसमें से पानी भर आ सके । श्रीकांत का आदेश तो उसके पत्र द्वारा उसे प्राप्त हुआ ही है। फिर उसके पालन में हिचकी कैसी ? उसका मूल्य चुकाने में संकोच कैसा ? हरिप्रसन्न जहाँ ले जाना चाहता है, वहाँ ही ले जाये । अपनी श्रध्दा को साथ लेकर वह तो अभय बन गई है, फिर कहाँ रह जाता है, उसके लिए भय का कारण ?'[१]

जो स्वाभाविकता तो है किंतु व्यवहार-जगत् में सुनीता द्वारा पति को मोटर के नीचे आते-आते पहचान लिया जाने पर भी निश्चेष्ट बनी रहना, उसकी विमुखता को कुंठित मनोविकार की कोटि में रख देती है । दूसरी प्रतिक्रिया अस्वाभाविक है । यह उसके भीतर पनपती हुई खीझा के विरोध में आकस्मिक उन्माद की स्थिति है । जंगल की एकान्त रात्रि में हरिप्रसन्न के द्वारा 'सुनीता को समूची चाह लेना, मांग लेने से सुनीता के भीतर पत्नीय के भय का एकदम उद्घाटन होता है और उसकी खीझा उन्माद बनकर प्रकट होती है, 'तुम्हें काहे की झिझक है, बोलो । मैंने कभी मना किया है ? तुम मरो क्यों ? मैं तुम्हारे सामने हूँ । इनकार कब करती हूँ ? लेकिन अपने को मारो मत । हरिबाबू, मारो मत, कर्म करो, मुझे चाहते हो तो मुझे ले लो ।'[२]

इस कथन के अंतिम दो वाक्यों से स्पष्ट है कि सुनीता हरि की उद्दण्ड मांग पर आकस्मिक आघात खाकर उन्माद की मनोदशा में आ गई है और अपने 'मूर्ख पति पर व्यंग्य करती हुई हरि को 'मरो नहीं, मुझे ले लो' का क्रन्दन कर रही है । इस मनोदशा में निर्वस्त्र हो जाने की अस्वाभाविक प्रतिक्रिया इसी उन्माद का

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'सुनीता' - - पृ. १९०
प्रकाशक - पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली-२
संस्करण - १९६०

२ 'जैनेंद्रकुमार' - 'सुनीता' - - पृ. २१९
प्रकाशक - पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली-२
संस्करण - १९६०

एक अंश है, जब कि वह हरिप्रसन्न के रोकने पर भी (बाड़ी खोलने की चेष्टा में) मुस्कराकर कह देती है, ' वह तो बाधा है, हरि । उसके रहते मुझे कैसे पाओगे ? उसे उतर जाने दो, तब मुझे लेना । खुली मुझको ही लेना .. मुझको ही नहीं चाहते ?'[1] व्यंग्य स्पष्ट है ।

यह सही है कि सुनीता का यह व्यवहार भी कुंठित मनोविकार का ही परिणाम कहा जायगा, किंतु इन दोनों मनोदशाओं के लिए उत्तरदायी उसका पति है, वह स्वयं नहीं । एक सती और निष्ठावान नारी को यदि उसका पति ही किसी अन्य के हाथों सौंपकर उसे पर पुरुष की इच्छा-पूर्ति का आदेश दे तो उसका मर्मस्थल क्यों घायल नहीं हो जायगा । परिस्थितियों की दृष्टि से सुनीता की उन्माद-दशा तथा परिणामत: प्रतिक्रियात्मक उच्छृंखल व्यवहार सहज कहा जा सकता है । ' राहु ' जब उसकी श्रद्धा-भावना को डसने को उतारू ही हो गया और उसका भीरु पति उसकी रक्षा करने की अपेक्षा मुँह छिपा गया, तो सुनीता का विस्फोट करना अन्यथा क्यों कर कहा जा सकता है ?

इस प्रकार जैनेंद्रकुमार के सुनीता उपन्यासमें हरिप्रसन्न का प्रवेश और उनके प्रति सुनीता का यह उन्मुक्त व्यवहार श्रीकांत और सुनीता के दाम्पत्य - जीवन कटुता या अशांति का समावेश नहीं, अपितु नव-रस का संचार करता है ।

जैनेंद्रजी के विवाहेत्तर आकर्षण की समस्या भी पूर्वाकर्षण की भाँति ही विषम है । प्रेमचंद युग के उपन्यासों में अधिकत्तर पुरुष के ही विवाहेत्तर आकर्षण का चित्रण मिलता है । किंतु प्रेमचंदोत्तर काल में नारी के व्यक्तित्व के विकास के फलस्वरूप इस युग के उपन्यासकारों ने पति-पत्नी दोनों के मन को भटकते हुए बताया है । विवाहोपरान्त पति-पत्नी के इस भटकाव से दाम्पत्य जीवन

---

1 'जैनेंद्रकुमार' - 'सुनीता' - पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली-२ संस्करण - १९६० - पृ. २२०

में अशांति और कटुता का समावेश हो जाता है। नारी विवाहेतर आकर्षण की समस्या को रखने वाले सर्वप्रथम उपन्यासकार जैनेंद्रजी ही हैं।

(४) पुरुष द्वारा नारी का शोषण --

पुरुष प्राचीन काल से ही नारी का शोषण करता आया है। आधुनिक समाज में शिक्षित और समर्थ नारी भी पुरुष द्वारा किस प्रकार शोषित होती है तथा इसके परिणाम स्वरूप उसकी मानसिक स्थिति कैसी हो जाती है इसका भी यथेष्ठ चित्रण उपन्यासकारों ने किया है। इस शोषण का मुख्य कारण यह है कि पुरुष अभी भी अहंकार और प्रभुत्व की अपनी परम्परागत प्रवृत्ति से मुक्त नहीं हो पाया है। साथ ही नारी नवीन विचारों की दिशा लेकर भी अपने प्राचीन संस्कारों से मुक्त नहीं हो पाई है।

आधुनिक समाज में शिक्षित और समर्थ नारी भी पुरुष द्वारा किस प्रकार शोषित होती है तथा उसके फलस्वरूप उसकी मानसिक स्थिति कैसी हो जाती है इस काल के उपन्यासों में इसका भी यथेष्ट चित्रण हुआ है। इस शोषण का मुख्य कारण यही है कि पुरुष अब भी अहंकार और प्रभुत्व की अपनी परम्परागत प्रवृत्ति से मुक्त नहीं हो पाया है। साथ ही नारी नवीन विचारों की दीक्षा लेकर भी अपने प्राचीन संस्कारों से मुक्त नहीं हो पाई है।

सर्व प्रथम जैनेंद्रजी ने " कल्याणी " (१९४०) में इस समस्या का चित्रण किया है। कल्याणी का पति डॅा. असरानी अपने मन को आधुनिक बनाये बिना अपनी पत्नी कल्याणी को आधुनिक बनाना चाहता है। वह इस बात का तो इच्छुक है कि उसकी पत्नी शिक्षिता हो, धनोपार्जन करे, फैशन से रहे किंतु वह उसके व्यक्तित्व पर, उसके शील-विवेक पर विश्वास नहीं कर पाता। यही आज के पुरुष-समाज की समस्या है। आज का पुरुष प्रत्यक्ष में आधुनिक है, पर नारी के प्रति उसकी भावना में परम्परागत संस्कार वर्तमान है।

पुरुष द्वारा नारी के शोषण के मूल में नारी के संस्कारों का भी हाथ है। उसके संस्कार उसे प्राचीन आदर्शों की ओर ले जाते हैं और वह बहुत

कुछ मौन रूप से स्वीकार भी कर लेती हैं, यद्यपि नवीन चेतना उसे स्वतंत्रता की ओर प्रेरित करती रहती हैं। नर और नारी के इस द्वन्द्व के कारण आज के जीवन में गैर असामंजस्य दिखाई देता हैं। यही असामंजस्य कल्याणी के जीवन में हैं जिसके कारण वह तिल-तिल कर घुल-घुलकर मरती हैं। कल्याणी की समस्या आधुनिक युग की जटिलता का मार्मिक चित्र हैं।

कल्याणी के सम्मुख एक ओर विलायती ठाट-बाट, पाश्चात्य शिक्षा-संस्कृति, नारी स्वातंत्र्य एवं उसकी आर्थिक समस्याएँ हैं तो दूसरी ओर भारतीय गृहिस्थ्य के प्राचीन आदर्श। इन दोनों में से वह किसी एक को अपनाना चाहती हैं। किंतु उसके जीवन में यह संभव नहीं हो पाता जिसके कारण उसका जीवन अशांतिपूर्ण बन जाता हैं। वह विलायत से डाक्टरी का अध्ययन करके लौटी हैं किंतु उसे अनुभव होता हैं कि उसके पति संतुष्ट नहीं हैं। इसलिए वह अपने पति डॉ. असरानी से कहती हैं -- 'मैं आपके मन को गृहलक्ष्मी बनकर स्वयं भी रहना चाहती हूँ। पर वह तभी रह सकती हूँ जब डाक्टरनी न रहूँ। डाक्टर होकर अन्त:पुर की शोभा मुझसे बहुत न बढ़ेगी। उस हालत में हर किसी के सामने मुँह उघाडे मिलना और बोलना होता हैं... दोनों में से कोई एक मुझे चुनकर दे दो। पातिव्रत या डाक्टरी। मैं सेवा में परायण हो जाऊँ, तो हालत डगमग रहेगी और जो मेरे ही चुनने की बात हो तो मैं गृहिणी ही रहूँगी, डाक्टर नहीं बनना चाहती।'[१]

इस प्रकार कल्याणी स्वयं गृह-कार्य को ही चुनती हैं। पर कुछ दिनों बाद वह अनुभव करती हैं कि उनके दवाखाने की स्थिति बहुत गिर गई हैं। पति भी उसके गृहदेवी बनने से प्रसन्न नहीं हैं। वे चाहते हैं कि वह डाक्टरी का कार्य पुन: आरम्भ कर दे। अत: वह फिर डाक्टरी में जुट जाती हैं और धनोपार्जन करती हैं। किंतु इस स्थिति में भी डा. असरानी संतुष्ट नहीं हो पाते। वे अपनी

---

[१] जैनेंद्रकुमार - कल्याणी - - पृ. ३९

प्रकाशक - हिंदी ग्रंथ - रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड,

बम्बई-४,

संस्करण - १९६२

पद-प्रतिष्ठा और अर्थ-लाभ के लिए अपनी पत्नी के सहयोग की अपेक्षा तो करते हैं किंतु उसे तनिक भी व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं देना चाहते । आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने पर भी पत्नी को पति की इच्छाओं का दास बनना पडता है । जो नारी शिक्षित है, आर्थिक रूप से स्वतंत्र है, उसकी आत्मा पुरुष की इस प्रभुत्व-कामना को स्वीकार नहीं कर पाती, चाहे व संस्कारवश उसके विरोध में कुछ कह न सके । कल्याणी की यही मूल समस्या है ।

कल्याणी पति की इच्छानुसार सारे कार्य करती है । वह डाक्टरी करती है, पति की प्रसन्नता के लिए अपनी इच्छा के विरुध्द प्रीमियर के स्वागत की तैयारी करती है, पति से पिटने पर भी पति की अवहेलना नहीं करती, उल्टे 'पति उसे बहुत चाहते हैं' कहकर उनकी प्रशंसा ही करती रहती है । किंतु स्वार्थ में अंधे डा. असरानी के मन में अपनी पत्नी के प्रति बराबर संदेह बना रहता है । पति की इच्छा का विरोध करना कल्याणी की प्रवृत्ति नहीं है और न कदाचित उसमें इसकी शक्ति ही है । वह समर्पण को ही नारी-जीवन की सिध्दि मानती है । फिर भी उसके त्रस्त मन की छिपी वेदना कहीं-न-कहीं झलक ही जाती है । बहुधा दाम्पत्य जीवन की विसंगति के लिए समाज पत्नी को ही दोषी ठहराता है । इस प्रकार का अपवाद सुनकर कल्याणी का मन व्यंग्य कर ही उठता है, 'स्त्री निर्दोष हो सकती है ? पहला दोष तो यही है कि वह स्त्री है ।' १

ऐसी स्थिति में कल्याणी का अतृप्त जीवन पुरुष के प्रति घृणा और प्रेम दोनों भावों का सृजन करता है । वह रायसाहब भटनागर, प्रेमियर, देवलालीकर, वकील सभी के प्रति आकर्षित होती जान पडती है, किंतु किसी से भी उसे वह मुक्त प्रतिदान नहीं मिलता जिस को पाकर वह उबर सकता । और क्योंकि उसमें इतनी क्षमता है कि वह अपने पति का स्वार्थ भावना और प्रेम प्रदर्शन के मिथ्या आडम्बर की वास्तविकता को पहचान सके, अत: उनको भी वह अपना मन

---

१ 'जैनेंद्रकुमार - कल्याणी' - पृ. २२
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर, प्राइवेट लिमिटेड,
संस्करण - १९६२

नहीं दे पाती । पुरुष वर्ग की इस स्वार्थ लोलुपता के कारण उसके मन में पुरुष जाति के प्रति एक घृणा का भाव भर जाता है ।'[१]

यद्यपि घृणा का यह भाव अन्तर्धारा की भाँति उसके मन में सदा वर्तमान है, फिर भी उसमें पुरुष के प्रति स्वाभाविक आकर्षण भी है ही । बुद्धिवती होने के कारण वह इसे स्वीकारने में भी नहीं हिचकती । कल्याणी अपने सम्बन्ध में अपवाहों को सुनकर कहती है ' सुन पडते है न ? .... मैं ही नहीं, तब कौन कह सकता है कि वे सब गलत हैं । फावडा बनाने के लिए भी सुई चाहिए ही । बेबात भला कोई बात चलती है ।'[२] घृणा और आकर्षण की ये दो विरोधी धाराएँ उसके जीवन को झंझालोडित कर देती हैं ।

कल्याणी और डा.असरानी के दाम्पत्य जीवन में सामंजस्य नहीं है इसका एक कारण दोनों में अहं भाव की प्रबलता भी है । डा.असरानी सोचते हैं कि उन्होंने कल्याणी से विवाह करके उसका उध्दार किया है, इस लिए अपने स्वार्थ साधन के निमित्त वे कल्याणी से चाहे जो कुछ करवा सकते हैं । पर कल्याणी का मन इसे स्वीकार नहीं कर पाता । अहं के कारण दोनों में से कोई भी अपना मन समर्पित नहीं कर पाता । व्यावहारिक जीवन में कल्याणी अपने पति की प्रसन्नता के लिए सब कुछ करती है । वह कहती है ' मेरा ध्यान उनसे दूर नहीं ।'[३] यदि उसके करने में कुछ कमी है तो वह उसको भी जानना चाहती है ' कोई मुझे बतावे कि मैं अपने को कहाँ बचाती हूँ ।' पति चाहे तो वह डाक्टरी करके उनके पास पैसों

---

१ 'डॅा. बिंदु अग्रवाल' - 'हिंदी उपन्यास में नारी-चित्रण' - - पृ. २१२

२ 'जैनेंद्रकुमार' - 'कल्याणी' - - पृ. २०
हिंदी ग्रंथ - रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड,
बम्बई-४, संस्करण - १९६२

३ 'डॅा. बिंदु अग्रवाल' - 'हिंदी उपन्यास में नारी-चित्रण' - - पृ. २१३

का स्तूप खडा कर दे, या चाहे तो परम्परा नुकूल गृहिणी की भाँति अन्तःपुर की शोभा बढाये । पर यह सब वह केवल कर्तव्य भावना से ही करती है । उसमें उसे सच्चा आनंद नहीं मिलता । इसीलिए वह जैसे लाचारी की स्थिति में यंत्रवत् सारे कार्य करती है । आन्तरिक ऐक्य के अभाव में डा.असरानी की इच्छाएँ कल्याणी की इच्छाएँ नहीं बन पाती । कल्याणी के मन का कुछ भाग अवश्य असंतुष्ट रह जाता है ।"[१] दोनों के बीच में जो मिथ्या अहंकार आ गया है उसी के कारण उनके जीवन में इतना द्वन्द्व है, खींचा है । उनका अन्तःकरण एक दूसरे की सचाई पर विश्वास नहीं कर पाता । इसीसे उनमें प्रेम का अभाव रहता है । "प्रेम का दूसरा नाम है विश्वास" कल्याणी किसी से भी एकांत निश्छल प्रेम न पाकर अकेलेपन का अनुभव करती है । अकेला प्राणी कैसे जिये ?

हारकर वह अपने अवचेतन की अतृप्त कामना को भगवद्भक्ति की ओर प्रवृत्त कर देती है । किंतु डा.असरानी जब उसके इस कार्य की भी आलोचना करते हैं तो उसके सब्र का बाँध टूट जाता है । "तुम साफ-साफ कह क्यों नहीं देते कि तुम क्या चाहते हो ? मुझे तिल-तिल कर बेचना चाहते हो, सो वह हो तो रहा है । आखिरी साँस तक मेरी बिक जायेगी, तब भी मैं इन्कार नहीं करूँगी[२] ।" और अंत में वह तिल-तिल करके ही मिट जाती है ।

इस उपन्यास के सम्बन्ध में एक प्रश्न यह उठता है कि जब कल्याणी अपने दाम्पत्य जीवन से इतनी त्रस्त है तो वह तलाक देकर अलग क्यों नहीं हो जाती ? शिक्षिता और आर्थिक रूप से समर्थ होने के कारण वह बड़ी आसानी से स्वतंत्र जीवन यापन कर सकती थी । किंतु नारी के संस्कार उसे इस पथ पर नहीं जाने देते । संस्कार उसके मन को इतनी गहराई से पकड़े हैं कि वह पति के विरोध में सोचना भी नहीं चाहती । वह बार - बार यही कहती है कि मेरे पति मुझे बहुत चाहते है,

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'कल्याणी' - - पृ. १५४
हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर प्रा. लि. बम्बई-४ संस्करण-१९६९

२ 'डॉ. बिंदु अग्रवाल' - 'हिंदी उपन्यास में नारी-चित्रण' - पृ. २१३
राधाकृष्ण प्रकाशन, १९६८

में ही दोषी हूँ । वह सोचती है कि आधुनिक सभ्यता के ही कारण उसके जीवन में इतना असंतोष है । अंग्रेजी पढ़ी-लिखी होने और डाक्टर होने के कारण उसे बाहर के व्यक्तियों से बात करना पड़ती है, इसी को वह शास्त्रों में वर्णित शीलवन्ती नारियों की मर्यादा के विरुध्द मानती है । वह अपनी अशांति का सारा दोष आधुनिक सभ्यता पर थोपकर प्राचीन भारतीय आदर्शों की सराहना करती है और ' भारत तपोवन ' का स्थापना कर शांति पाने की चेष्टा करती है । किंतु उसके मन की अशांति पूर्ववत् ही रहती है ।

इस प्रकार लेखक ने ' कल्याणी ' में पुरुष की मध्ययुगीन अधिपत्य की भावना उस की मिथ्या आधुनिकता और उसकी कामनाओं के जाल में बंदिनी शोषित नारी की समस्या का बड़ा प्रभावपूर्ण चित्रण किया है । डा.असरानी और कल्याणी चरित्र-विशेष से भी अधिक प्रतीक बन जाते हैं, और उनके माध्यम से आधुनिक समाज के खोखलेपन का उद्घाटन होता है । परंतु अपने गांधीवादी आदर्शों के प्रति आस्था रखने के कारण लेखक ने ' कल्याणी ' का अन्त नारी के आत्म-पीडन और बलिदान में किया है, विद्रोह में नहीं । यों, कल्याणी की करुणा और भी मर्मस्पर्शिनी एवं प्रभावोत्पादक बन जाती है ।

' सुनीता ' उपन्यास में ' सुनीता ' श्रीकांत की पत्नी है, किंतु संपूर्ण उपन्यास में श्रीकांत और सुनीता के सम्बन्धों को दाम्पत्य ऐक्य का कोई आभास नहीं मिला । कहीं-कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है कि दाम्पत्य ऐक्य का कोई आभास नहीं मिला । कहां-कहां तो ऐसा प्रतीत होता है कि दाम्पत्य जीवन में उसे पराजय का सामना करना पड़ता है । ' घर के काम धन्धे की बात हो, तो उसको लेकर दोनों मिल जाते हैं । वह न हो, तो फिर अपने में बंद हो, अलग हो रहते हैं । ' [१]

---

१ ' जैनेंद्रकुमार ' - ' सुनीता ' - पूर्वोदय प्रकाशन, नया दिल्ली-२ संस्करण - १९६० - पृ. २३

पति परायणा सुनीता के मन में श्रीकांत ने ही हरिसंबंधी जिज्ञासा उत्पन्न की । श्रीकांत द्वारा प्रत्येक बात में हरिप्रसन्न की चर्चा सुनीता के मन में हरिप्रसन्न का गहरा प्रभाव अंकित करने में सहायक हुई । निरन्तर हरिप्रसन्न की चर्चा से वह अनेक बार पति से खीझा भी उठती हैं किंतु उसकी इस खीझ का श्रीकांत पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता । वह पति में खो जाना चाहती है, परंतु श्रीकांत पत्नी के गौरव की रक्षा करने की अपेक्षा स्वयं हरिप्रसन्न के लिए उसे प्रेरित करता है । श्रीकांत अपनी पत्नी को उसके पत्नीत्व का अधिकार न देकर उसके सम्मुख पर पुरुष (हरिप्रसन्न) का गुणगान करता है । जब कि वह पति के प्रति पूर्ण समर्पण चाहती है । ऐसी स्थिति में उसका कुण्ठाग्रस्त होना स्वाभाविक ही है । उसका पति बलात उसे पर हाथ सौंपना चाहता है । प्रवास में जाने के उपरान्त श्रीकान्त जो पत्र सुनीता को लिखता है उसमें स्पष्टत: उसे अपने आपको हरिप्रसन्न की इच्छा पर छोड़ देने की प्रेरणा देता है । कुण्ठित मनोविकार से ग्रसित सुनीता मोटर के नीचे आते पति को पहचान कर भी निश्चेष्ट बनी रहती है तथा जंगल की एकान्त रात्रि में हरिप्रसन्न द्वारा सुनीता की सम्पूर्ण चाह के प्रत्युत्तर निर्वस्त्र हो आत्मसमर्पण करना सुनीता की कुण्ठाओंकाही परिणाम है ।

त्यागपत्र की नायिका मृणाल का चरित्र अत्यंत कुण्ठायुक्त है । विद्यार्थी जीवन में उसे अपनी सहेली शीला के भाई से मधुर लगाव हो जाता है । जब उसकी भाभी - भाई को इस सम्बन्ध का पता चलता है । तो वह उसे पीटती है तथा स्कूल छुड़ाकर उसे बाहर की दुनिया से पृथक कर देती है और कुछ ही समय बाद पर दुहाजू प्रौढ़ के साथ उसका विवाह कर दिया जाता है । उसका पति भी यदा-कदा उसे बेंत से पीटता है । पति के प्रति प्रकट की गयी वफादारी के प्रत्युत्तर में मिले इस क्रूर व्यवहार के कारण मृणाल का कोमल मन और भी कुण्ठित हो जाता है । अपने पूर्व प्रथम आकर्षण, प्रेम की असफलता और वैवाहिक जीवन में पति द्वारा मिलनेवाली प्रताड़ना और लाछन तथा निष्कासन उसे और भी कुण्ठित बना देता है और अपनी दैहिक आवश्यकताओं की महत्ता समझाकर कोयलेवाले के आश्रय में रहकर देहदान द्वारा उस बनिये के उपकार का बदला देती है ।

यह देहदान उस की मानसिक कुण्ठा का परिणाम हैं वरना किसी भी स्त्री के लिए शरीर-दान इतना सहज नहीं हैं। कुछ समयोपरांत वह कोयलेवाला भी उसे छोडकर चल जाता हैं और जीवन की असीम विसंगतियों को पार करती हुई मृणाल अनेक पुरुषों की वासना पूर्ति करती हुई यौनिक रोगों में ही मर जाती हैं। भाई और पति के कठोर और क्रूर व्यवहार के कारण ही उसका व्यक्तित्व कुण्ठित हो उठता हैं, जिसके परिणाम स्वरुप मनोविकृति की अवस्था में वह अपने लोगों की भोग्या बन जाती हैं। इस प्रकार मृणाल के चरित्र में आदि से अन्त तक दमन, कुण्ठा, असाधारणता आदि प्रवृत्तियाँ दिखायी पडती हैं।

'त्यागपत्र' की मृणाल काम वासना को ही नहीं हृदय के सभी विकारों को विधि की विडम्बना मानकर चुपचाप सहने को तैयार हो जाती हैं। मृणाल का यह मनोभाव निश्चित ही जितने अर्थ में परिस्थिति प्रेरित हैं उतने ही अर्थ में यह उनके व्यक्तिगत कुंठा में उत्पन्न भी हैं।

'सुखदा' में सुखदा का पति सुखदा को अपने प्रेम में मुक्त रखता हैं। उसका यह स्वभाव स्वयं किन्हीं व्यक्तिगत कारणों से उत्पन्न हैं। पति श्रीकांत हीनता ग्रंथि (Inferiority Complex) से पीड़ित हैं। वह अपने को आर्थिक अस्थैर्यता के कारण सुखदा जैसी नारी के उपयुक्त नहीं समझता। संभवतः यही कारण हैं कि वह सुखदापर नियंत्रण नहीं रख पाता और प्रेम आकर्षण गृहस्थी और कर्तव्य का बन्धन शिथिल होने लगता हैं। इसका प्रभाव सुखदा पर जिस रुप में पडता हैं वह अत्यंत प्रतिक्रियापूर्ण हैं। और पराजित मनोवृत्ति का उदाहरण हैं। कोई भी नारी पति का अपौरुष्यहीन स्वभाव पसन्द नहीं करती। सुखदा के पति का प्रत्येक बात पर हार मानना, मौन बैठना, सुखदा को खलता था। " स्वामी के मुह से जब हल्की मितव्यया की बातें सुनती तो मुझे अच्छा नहीं लगता था। मैं उनको कहती थी कि सदा ऊँचाई की तरफ देखना चाहिए, तभी उन्नति होगी। मेरे यह पति कितने नीरस और सामान्य जान पड़ते थे। मुझे मालूम होता था कि यों न चलेगा। पति में यदि कुछ नहीं हैं तो मुझे ही उठना होगा।" [१]

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'सुखदा' - — पृ. २३
पूर्वोदय प्रकाशन, नया दिल्ली-२
संस्करण - १९६०

इस प्रकार पति में निष्क्रियता और मानसिक हीनता देखकर सुखदा अपनी मानसिक कुंठा मे ग्रस्त होकर व्याकुल हो जाती हैं। दूसरी ओर वह लाल के मुक्त स्वच्छन्द चरित्र से मुग्ध होने पर भी उसकी ओर प्रवृत्ति नहीं हो पाती। इसका परिणाम यह होता हैं कि वह पति को छोड़कर मायके जाती है।

इस प्रकार यह नारियाँ कैदी की तरह पुरुष द्वारा शोषण के बीच हृदय को चीरती हुई क्लेश का आघात: हँसमुख रूप में स्वागत करती हैं और मछली की तरह तड़पती हैं। इनका जीवन से समझौता हैं। पति से समझौता है।

(ई) नारी मन की दुर्बलता --

कहा जाता है कि यदि नारी का चरित्र दृढ़ है, उसमें आत्मबल है तो बाह्य प्रलोभन उसको नहीं डिगा सकते। किंतु व्यक्ति में चारित्रिक दृढ़ता और नैतिक बल परिपक्व अवस्था, शिक्षा और अनुभव के पश्चात आते हैं। बेचारी बाल-विधवा उम्र, शिक्षा और अनुभव तीनों में ही अपरिपक्व होती थी। ऐसी स्थिति में उससे ऐसे दृढ़ चरित्र की आशा करना, जिसके सामने पुरुष नत-मस्तक हो जाए सही नहीं कहा जा सकता।

प्रेमचंदयुग के उपन्यासकारों ने विधवा की सभी समस्याओं को बड़े मार्मिक ढंग से चित्रित किया है और उनके समाधान की भी ओर ध्यान दिया है। इस युग के उपन्यासों को देखने से दो बाते ज्ञात होती हैं। पहली यह कि उपन्यासकारों ने केवल बाल विधवा के ही पुनर्विवाह की ओर आग्रह किया है। जो नारी अनाघ्रात कुसुम की भाँति शरीर और मन से बिल्कुल पवित्र है, वास्तव में जिसका विवाह हुआ ही नहीं, उसी को वे पुनर्विवाह की ओर अग्रसर करती हैं। नारी के व्यक्तित्व, स्वाधीनता और प्रेम को महत्वपूर्ण मानकर उसको पुनर्विवाह की अनुमति देने का विचार उनके मन में नहीं आया।

दूसरी बात यह है कि प्रेमचन्द युग के उपन्यासकारों ने विधवा के पुनर्विवाह का चित्रण बहुत कम किया है। उन्होंने विधवा के कष्टों की और उसके पुनर्विवाह की आवश्यकता की चर्चा तो खूब की है, पर क्रियात्मक रूप में उसका प्रतिपादन करने में वे झिझकते रहे हैं। इसका कारण यह भी हो सकता है कि वे समाज के प्रबल संस्कारों को ऐसा धक्का नहीं पहुँचाना चाहते थे। जिसकी प्रतिक्रिया भी बलवती हो अपितु वे धीरे-धीरे सामाजिक चेतना के विकास द्वारा अपना उद्देश्य सिध्द करना चाहते थे। इसलिए विधवा कभी किसी आश्रम की शरण लेती है, तो कभी भगद्भक्ति में लीन हो जाती है, कभी आत्महत्या कर लेती है। जैनेंद्रजी के 'परख' उपन्यास में विधवा के पुनर्विवाह का अंकन मिलता है।

जैनेंद्रकुमार के 'परख' की कट्टो तो निःस्वार्थ समर्पित प्रेम की साकार

प्रतिमूर्ति है । वह अल्हड़ ग्रामीण बाल-विधवा है । जिसके मन में काम वासना का लेश भी नहीं है । सत्यधन कट्टो को पढ़ाता है । कट्टो अत्यंत निश्चल और सात्विक भाव से सत्यधन को प्रेम करती है । कट्टो विधवा होते हुए भी सत्यधन के प्रति उत्पन्न रागात्मक सम्बन्धों के कारण स्वयं को सधवा अनुभव करने लगती है, और गाँव के मेले से सिंदूर की डिबिया, सस्ता शीशा आदि श्रृंगार की सामग्री खरीद लाती है । कट्टो मन जितना पवित्र और उतनाही मुक्त है उसका व्यवहार संयमित और सरल है । उसका प्रेम उसके मन में कोई झिझक, कोई संकोच नहीं उत्पन्न करता, क्योंकि वह अपने प्रेम का कोई प्रतिदान नहीं चाहती । वह निष्काम समर्पिता है । प्रेम उसके नारी मन की ऐसी सहज, अकृत्रिम और स्वाभाविक क्रिया है जैसे सूर्य के दर्शन कर कमलिनी का खिलना । सारे उपन्यास में कट्टो की यह खिलखिलाहट गूँजता रहती है ।

पर सत्यधन बिहारी की बहन गरिमा से विवाह कर लेता है । कट्टो मेले से खरीदी हुई श्रृंगार सामग्री सत्यधन की पत्नी गरिमा को भेंट स्वरूप देकर स्वयं रास्ते से हट जाती है । कट्टो को सत्यधन का विवाह से न दु:ख होता न आश्चर्य । जिसमें उसके प्रिय को संतोष हो उसीमें उसका संतोष है, क्योंकि समर्पित होने के बाद उसका अलग कोई व्यक्तित्व है ही कहाँ । वह सत्यधन से स्वयं कहती है 'जो कुछ भी तुम चाहते हो सबमें कट्टो की खूब राय है । कट्टो उसे खूब चाहती है । सत्यधन की प्रेरणा से वह बिहारी से विवाह सूत्र में बँधती है । वह परिणय दैहिक न होकर आध्यात्मिक है -' हम दोनों वैधव्य यज्ञ की प्रतिज्ञा में एक दूसरे का हाथ लेकर आजन्म बंधते हैं । हम एक होंगे - एक प्राण दो तन । कोई हमें जुदा नहीं कर सकेगा .... यह महाशून्य साक्षी हो, हम कट्टो बिहारी सदा एक दूसरे के प्रति कट्टो - बिहारी रहेंगे, न कम ज्यादे ।' [१]

कट्टो गरिमा से ईर्ष्या नहीं करती प्रत्युत वह उसको सहज ही अपनी बड़ी

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'परख' - - पृ. १०४-१०५
हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड,
संस्करण - १९४१

बहन के रुप में स्वीकार करती हैं। कट्टो में नारी जीवन की कोमलता, उदारता, त्याग और भावुकता का समावेश है।

इसी सात्विक और निस्वार्थ प्रेम के कारण कट्टो के लिए मिलन-विरह में कोई अन्तर नहीं पड़ता। वरन उसका तो मत है कि मिलन में भले ही प्रेम का अन्त हो जाये, विरह में तो प्रेम अनिवार्य रुप से प्रतिक्षण साथ रहता है, यही कारण है कि वह सत्यधन को बाँध रखने की कल्पना नहीं करती। वह विरह को सच्चे प्रेम-जीवन का प्रतीक मान कर स्वीकार करती है। उसका प्रेम शारीरिक मिलन अथवा विरह की अपेक्षा नहीं रखता। वह समर्पिता है क्योंकि उसका मन समर्पित है।

कट्टो सरल हृदय ग्रामीण लड़की है। वह अपने मन में सत्यधन के प्रति श्रध्दा मिश्रित प्रेम का भाव रखती है। चार वर्षों की अवस्था में विधवा होने से लोग उसे भाग्यहीन समझते हैं। परिणाम स्वरुप हीनता की भावना उसके मन में रहती है पर सत्यधन का सहचर्य पाकर आत्म-विभोर हो जाती है। वह मन ही मन सत्यधन को देवता मान बैठी है। सत्यधन के अप्रत्याशित व्यवहार से कट्टो के मन में उत्सर्ग का भाव पैदा होता है। सत्यधन अपनी झेंप मिटाने के लिए कट्टो के उध्दार की बात सोचता है। वह भावुक हृदय बिहारी को कट्टो के साथ विवाह करने के लिए प्रेरित करता है।

जैनेंद्रकुमार जी भी नारी मन की दुर्बलता को देखा है - बाल विधवा की आत्म-व्यथा को समझते थे। इसलिए उन्होंने बड़े स्वाभाविक ढंग से "परख" में बाल-विधवा कट्टो के मन की उथल-पुथल का चित्रण किया है और उसके माध्यम से नारी मन की दुर्बलता का चित्रण किया है। जब "कट्टो चार साल की थी तब उसका विवाह हो गया और पाँच वर्षों की होते-न-होते वह विधवा हो गई।"[१]

---

१ 'डॉ. बिंदु अग्रवाल' - 'हिंदी उपन्यास में नारी चित्रण' - पृ. १६५
प्रकाशक - राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-६,
संस्करण - १९६८

बाल साथी सत्यधन के प्रति उसका प्रेम स्वाभाविक रुप से विकसित होता है मन-ही-मन उसको अपना मन समर्पित कर देता है। एक बार कट्टो सत्यधन के चरणों को अश्रु-जल से सिंचित करती है। 'पैरों को पाकर कट्टो ने अश्रु-जल से उनका खूब ही अभिसिंचन किया।'[१] वह विधवा क्षण को अपना सौभाग्य समझती है। 'इधर कट्टो सौभाग्य के पहाड़ के नीचे दबकर अचेतन-सी हो गई। जिसके पास तक स्वप्न में भी पहुँचने की हिम्मत नहीं हुई थी, वह सौभाग्य जब एकदम इस तरह सिर पर बरस पड़ा तो कट्टो विह्वल हुई और फिर बेसुध हो गई।'[२]

जैनेंद्रकुमार जी ने नारी मन की दुर्बलता दिखाई दी है। कट्टो तो बाल-विधवा है, कट्टो तो जानती है कि विधवा के लिए ये सोहाग की चीजें वर्जित हैं। इसलिए वह न तो किसी से इन चीजों को मँगाती है और न इस विषय में अपनी माँ से ही चर्चा करती है। इसी उछाह की मनोदशा में वह अपने कर्तव्य को भूलकर बाजार से सोहाग के अलंकार खरीद लाती है। 'ये चीजें खरीद-कर वह चौके में नहीं गई, अपने कमरे में आई। वहाँ एक तेल से चिकने हो रहे आले में अभी-अभी ताजी-ताजी बिसाती से खरीदी एक टिकुली की डिबिया, एक छोटा-सा दर्पण, एक राधा-किसन की तस्वीर - ऐसी ऊटपटाँग चीजें सजा कर रख दी है। वहाँ आकर उस छोटे से दर्पण को लेकर, दोनों भौंहों के बीचोबीच, जरा ऊपर को साफ से उस डिबिया में से बड़ी नन्हीं-सी एक टिकुली लगा ली। देखती रही - कैसे यह लाल-लाल बिन्दी काली पड़ती जा रही है।'[३]

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'परख' - - पृ. ५१
हिंदी ग्रंथ - रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, संस्करण-१९४१

२ 'जैनेंद्रकुमार' - 'परख' - - पृ. ५१-५२
हिंदी ग्रंथ - रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड,
संस्करण - १९४१

३ 'डॉ. बिंदू अग्रवाल' - 'हिंदी उपन्यास में नारी-चित्रण' - - पृ. १६५
राधाकृष्ण प्रकाशन

इन पंक्तियों में लेखक ने अपनी कुशल लेखनी से नारी मन की दुर्बलता से विधवा के मन की ललक का कितना सजीव और मार्मिक चित्र उपस्थित किया है। यद्यपि सत्यधन माँ की प्रसन्नता के लिए और मर्यादा के विचार से कट्टो से विवाह नहीं करता, फिर भी यदि सत्यधन उसके सामने ऐसा प्रस्ताव रखता तो सम्भवत: कट्टो को विवाह करने में आपत्ति न होती। किंतु सत्यधन के अतिरिक्त वह अन्य किसी व्यक्ति से विवाह नहीं करना चाहती। सत्यधन की इच्छा पूरी करने के लिए बिहारी के मन का झुकाव समझकर वह बिहारी से केवल आध्यात्मिक सम्बन्ध स्वीकार करती है। विवाह की बात छिड़ते ही प्राचीन परिपाटी का सहारा ले लेती है "जीजी कुछ नहीं। भला ब्याह कैसा ? जीजी, जानती नहीं तुम मैं तो विधवा हूँ। विधवाओं का भी ब्याह होता है ? छि: ।"[१]

इस तरह जैनेंद्रजी ने कथा चक्र को अप्रत्याशित मोड़ देकर बड़ी कुशलता से काम लिया है। मूलत: आदर्शवादी होने के कारण वे एक ओर व्यावहारिक क्षेत्र में विधवा-विवाह को बचा जाते हैं। नारी मन की दुर्बलता को दूर करना चाहते हैं। विधवा हो भी तो भी क्या ? उसका अवश्य विवाह होगा। विधवा - विवाह को सहानुभूति भी दे देते हैं। उपन्यास के अन्त में पाठक के मन पर यही प्रभाव पडता है कि वास्तव में कट्टो वैधव्य के कारण नहीं, सत्यधन के प्रति अपने प्रेम के कारण ही बिहारी से पुनर्विवाह नहीं करती।

इस प्रकार इस युग तक आते-आते विधवा-विवाह की समस्या का समाधान हो जाता है। फिर भी, उपन्यासकारों ने नारी मन की दुर्बलता का समर्थन करने पर भी विधवा मन की दमित,कामनाओं की उच्छृंखल अभिव्यक्ति को क्षमा नहीं किया है।

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' -'परख' - - पृ.११७
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर - प्राइवेट लिमिटेड,
बम्बई-४,
संस्करण - १९४१

(क) नैतिक मूल्यों में परिवर्तन की समस्या --

नारी की नैतिकता के सम्बन्ध में नए सिरे से विचार करने की आवश्यकता प्रेमचन्द युग में ही स्वीकार हो चुकी थी । यदि परिस्थितियों से विवश होकर नारी को अनैतिक आचरण करना पड़ता है, तो उसका दोष नारी पर न होकर उन परिस्थितियों पर है यह बात प्रेमचन्दकालीन अनेक उपन्यासों में ध्वनित होती मिलती है । इसीसे सम्बध्द यह भावना भी प्रचारित हो चुकी थी कि नैतिकता की कसौटी शारीरिक अथवा भौतिक कर्म की पवित्रता नहीं अपितु भावना और विचारों की पवित्रता है ।

प्रेमचन्दोत्तर काल में इस सिध्दात का विशेष रूप से विकास हुआ और नारी की नैतिकता के प्रश्न पर नए पहलुओं से विचार किया गया । अपढ़ और ग्रामीण नारी की स्थिति में अब भी कोई विशेष अन्तर नहीं आया था, और वह अब भी पुरुष के हाथ की कठपुतली थी । पुरुष-समाज की स्वार्थपरता ही उसके जीवन को निर्धारित करती थी । अत: लेखक अब भी यह मानकर चलता है कि पुरुष के जाल में विवश होकर जब नारी अनैतिकता की राह पर जाती है, तो वह हमारी सहानुभूति की अधिकारिणी है ।

पुरुष समाज ट्वारा निरूपित नारी-नैतिकता की कसौटी कितनी भ्रामक और अपूर्ण है, इसका सबसे प्रबल प्रकाश हमें जैनेंद्र जी के उपन्यासों में मिलता है । पुरुष नारी से जिस प्रकार के आचरण की अपेक्षा रखता है, वह अन्याय और अत्याचार की कोटि में आता है । यह नारी का दुर्भाग्य ही है कि शिक्षित और आधुनिक पुरुष भी बहुधा इस तथ्य से अनजान है । यद्यपि जैनेंद्रजी ने अपने अहिंसावादी आदर्श के कारण ही नारी को इस अत्याचार को चुपचाप स्वीकार करते दिखाया है, पर उसके फलस्वरूप नारी को जो बलिदान करना पड़ता है, उससे नारी की पीड़ा पर तो प्रकाश पड़ता ही है, साथ ही नारी की सच्ची नैतिकता भी प्रतिष्ठित होती है । 'त्यागपत्र' की मृणाल और 'कल्याणी' की कल्याणी दोनों पतिव्रता हैं और भरसक अपने पति को संतुष्ट करने का प्रयत्न करती हैं । पर दोनों के ही जीवन का अन्त दु:खद होता है ।

'त्यागपत्र' में प्रेम की नैतिकता का प्रश्न उपस्थित किया गया है। मृणाल किशोरावस्था में ही शीला के भाई से प्रेम करती है, पर उसकी चिन्ता न करके उसका विवाह अन्यत्र कर दिया जाता है। मृणाल विरोध नहीं करती क्योंकि अभिभावकों के आदेश का पालन समाज में कर्तव्य माना गया है। उल्टे वह अपने पति को सम्पूर्ण मन से वरण करना चाहती है, उनसे कोई दुराव नहीं रखती। 'ब्याह के बाद मैंने बहुत सोचा, बहुत सोचा। सोचकर अन्त में यह पाया कि मैं छल नहीं कर सकती। छल पाप है। हुआ जो हुआ। ब्याहता को पतिव्रता होना चाहिए। सच्ची बनकर ही समर्पित हुआ जा सकता है।'[१]

फलत: अपने पूर्व प्रेम का कथा वह निश्छल हृदय से पति को बता देती है। इस सत्या-चरण का परिणाम एकदम विपरीत होता है। वह पति की घृणा की भोजन बन जाती है और पति छोड़ देने पर विवश कर दी जाती है। पति का इस कठिण आज्ञा का पालन मृणाल पातिव्रत के आधार पर ही करती है। वह प्रमोद से साफ कहती है, 'पति को मैंने नहीं छोड़ा। उन्होंने ही मुझे छोड़ा है। मैं स्त्री-धर्म को पति-व्रत धर्म ही मानती हूँ। उसका स्वतंत्र धर्म मैं नहीं मानती। क्या पतिव्रता को यह चाहिए कि पति उसे नहीं चाहता तब भी वह अपना भार उस पर डाले रहे? वह मुझे नहीं देखना चाहते, यह जानकर मैंने उनकी आँखों के आगे से हट जाना स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा 'मैं तेरा पति नहीं हूँ।' तब मैं किस अधिकार से अपने को उन पर डाले रहती? पतिव्रता का यह धर्म नहीं है।'[२]

इस प्रकार अभिभावक का आदेश पालन करने के कारण मृणाल अपने प्रथम प्रेम में निराश होती है, और पति के प्रति सत्याचरण करने के कारण पति-गृह से वंचित हो जाती है। प्रचलित मान्यताओं के अनुसार जो कर्म नैतिक है, वे ही

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'त्यागपत्र' - - पृ. ५६
प्रकाशन - पूर्वोदय प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली-२
संस्करण - १९७९

२ 'जैनेंद्रकुमार' - 'त्यागपत्र' - - पृ. ५६
प्रकाशक - पूर्वोदय प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली-२
संस्करण - १९७९

उसके दु:ख के निर्माता हैं। अप्रत्यक्ष रूप से जैनेंद्रजी ने मृणाल के चित्रण द्वारा दो नए नैतिक सिध्दान्तों का प्रतिपादन किया है -- (१) नारी का विवाह प्रेम की परिणति के रूप में ही हो । (२) पति-पत्नी के सम्बन्ध समानता पर आधारित हों ।

मृणाल का परवर्ती जीवन आत्मदान की प्रेरणा से उत्पन्न व्यवहार की विडम्बना है । वह कोयलेवाले के साथ रहने लगती है क्योंकि उससे उसे संवेदना मिली है, और संवेदना का प्रतिदान देना वह अपना धर्म समझती है । पर अपने इस आचरण का परिणाम भी उसे स्पष्ट मालूम है । वह जानती है कि एक दिन कोयलेवाला उससे उकता जायेगा और यह भी कि अन्त में कोयलेवाले को अपने परिवार के पास लौट जाना चाहिए । यह सब जानकर भी वह दु:खी नहीं है क्योंकि उसे लगता है कि यही उसका कर्तव्य है । और कोयलेवाला जब उसे छोड जाता है, तो वह एक संभ्रान्तकुल में बालकों को पढाने का काम स्वीकार कर लेती है । पर वहाँ से भी उसे चला जाना पड़ता है ,और अन्त में उसे वहाँ शरण लेनी पडती है ,जहाँ समाज के परित्यक्त,घृणित जीव अपनी मृत्यु की घड़ियाँ गिनते रहते हैं । 'दर-दर भटकी हूँ और मैंने सीखा है कि इन दुर्जन लोगों की सद्भावना के सिवा मेरी कुछ और पूँजी नहीं हो सकती ।'[१]

मृणाल के जीवन का यह अन्त प्रचलित समाज-व्यवस्था की नैतिक विफलता की घोषणा करता है । मृणाल तो त्याग और सत्प्रवृत्ति से अपना जीवन बिताना चाहती है, पर उसे घृणा और लांछनाही मिलती है । सारी प्रचलित नैतिकता आडम्बर और मिथ्या सिध्द हो जाती है । 'त्यागपत्र' में लेखक का असली उद्देश्य नैतिकता की इस घोर समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट करना ही है, इसका निश्चित प्रमाण है । सारी कथा प्रमोद के माध्यम से कही गई है ।

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'त्यागपत्र' - - पृ. ८२

प्रकाशक - पूर्वोदय प्रकाशन,नयी दिल्ली-२

संस्करण - १९७१

जो जज है - न्यायाधीश, और जो बुआ के जीवनपर विचार करता है और पाता है कि न्याय के नाम पर बुआ के साथ घोर अन्याय हुआ है। बुआ के मन की सत्यनिष्ठा, आत्म-त्याग और बलिदान की भावना प्रमोद पर प्रकट है। इसलिए वह बुआ को पापिष्ठा कहने के स्थान पर पाप-पुण्य की कसौटी की ही परख में लग जाता है और अंत में अपने पद से त्यागपत्र दे देता है क्योंकि जिस समाज में न्याय की कसौटी ही गलत हो, उसमें न्यायाधीश अन्यायाधीश ही बन जायेगा। 'त्यागपत्र' इस प्रकार नारी-चरित्र की नैतिकता के पुनर्मूल्यांकन की अत्यंत प्रभावोप्रादक और मर्म-भेदी पुकार है।

जैनेंद्रजी के अनुसार 'प्रेम में कामना नहीं, हो सकती, उसमें इतनी अपूर्णता ही नहीं हो सकती।'[1] जैनेंद्र के इस विश्वास के विपरीत आधुनिक मनोविज्ञान प्रेम की घनिष्ठता के लिए इन्द्रिय सम्बन्ध की महत्ता का प्रतिपादन करता है। वह दमनशील नैतिकता का विरोधी है। पुरुष प्रधान समाज में परम्परागत विवाह संस्था की दमनशील नैतिकता का शिकार स्त्रियों को ही प्राय: बनना पडा है। इस पारम्परिक नैतिक दृष्टि के कारण ही मनु ने 'न स्त्री स्वातंत्र्य मर्हति' का फतवा दे दिया है। स्वातंत्र्य छिन जाने के बावजूद स्त्रियाँ जवान होती रहीं और जवानी के सपनों में रंग भरती रहीं। अपने रंगीन सपनों से भावविष्ट बनकर वे दुनिया की दृष्टि से कुपथ पर पाँव बढाती रही हैं। इसी बात को ध्यान में रखकर बिहारी ने कहा है कि 'कितै न अवगुण जग करत नै वै चढती बार।' रंगीन सपनों के आवेश में अवगुण करनेवाली बढती उमर को दबाने के लिए किये गये प्रयत्नों के कारण स्त्री के दमित व्यक्तित्व ने अनबूझा पहेली का रुप ग्रहण कर लिया परिणामत: समाज में 'स्त्रियश्चरित्र ..... देवो न'

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'कल्याणी' - - पृ. १४१-१४२
प्रकाशक - हिंदी ग्रंथ-रत्नाकार प्राइवेट लिमिटेड,
गिरगाँव, दरियागंज, बम्बई-४, संस्करण - १९६२

दिल्ली

जानति,कुतो मनुष्य' की उक्ति प्रचलित हो गई ।[१]

कल्याणी का समूचा असाधारण जीवन व्यवहार पति-पत्नी में कुसमंजन, चित्त - विकृतियाँ तथा मुमूर्षा भावना, सब पति की उसी गुप्त चोट का परिणाम है। यद्यपि चोट लगे देर हो गई है, वह उसे भूलाकर निरन्तर पति के प्रति समर्पण की आकांक्षा को पोषित करती रहती है, किंतु समय-समय पर पति द्वारा पहुँचाई उस चोट में टीस जगाता रहता है और वह समय के अनुलेप से भरते हुए घाव को पुन: कुरेदकर रिसने के लिए छोड़ देता है। यही कल्याणी का व्यक्तित्व है, इसी में उसकी समस्त कुंठाएँ निहित हैं और यही उसकी मनोदशाओं में आकस्मिक परिवर्तनों का आधार है।

डॉ.कलयणी असरानी विदेशी शिक्षा-प्राप्त विदुषी महिला है। एक ओर वह अपने वर्तमान से समझौता करके पुरातन भारतीय सिध्दान्तानुसार पति में देवत्व को स्वीकार करती हुई उसके प्रति समर्पण के भावों से परिचालित होती थी। समझौते की दशा में अपने विरुध्द प्रचारित प्रवादों को भी वह सहज - मुख स्वीकार कर लेती है -- 'देखता हूँ, आपको लेकर तरह-तरह के प्रवाद सुन पडते हैं। सुनकर उन्होंने हसकर दोहरा दिया - सुन पड़ते हैं न ? ..... वह बोली - मैं नहीं, तब कौन कह सकता है कि वे सब गलत हैं। फावड़ा बनने के लिए सुई तो चाहिए ही।'[२]

यहाँ समझौते में निहित समर्पण भावना उसे पति की प्रशंसा एवं आत्म-भर्त्सना के चौराहे पर भटकने को छोड़ देती है। पति उसे पिटता भी है। उसकी

---

१ 'डॉ.चन्द्रभानु सोनवणे' - 'हिंदी उपन्यास विविध आयाम'- - पृ. ७७
प्रकाशक - पुस्तक संस्थान,कानपुर-२
संस्करण - १९७७

२ 'डॉ.मनमोहन सहगल' - 'उपन्यासकार जैनेंद्रकुमार मूल्यांकन और मूल्यांकन'- - पृ. १५७
प्रकाशक - साहित्य भारती ,दिल्ली-१
संस्करण - १९७६

संकीर्ण भावनाओं से प्रताड़ित भी होती हैं बाजार की भीड़ के सम्मुख जूते से मारी जाती हैं किंतु ' असल में वह मुझे बहुत-' वह बहुत उदार हैं । ' वह साहसी हैं । नहीं तो मैं - मैं क्या विवाह योग्य तक थी ? ' आदि उक्तियाँ कल्याणी की समर्पणात्मक प्रतिक्रिया ही तो हैं । ' शास्त्रों में जैसी सती शीलवन्ती मूर्ती लिखी हैं, मैं वैसी कहाँ हूँ ? अंग्रेजी पढ़ी हूँ, मोटर चला सकती हूँ , क्या ऐसी नारी शीलवन्ती हो सकती हैं ?'[१]

यह कथन आत्म-भर्त्सना भी हैं और पति की संकीर्णता पर तीखा व्यंग्य भी । ऐसा प्रतीत होता हैं कि आत्मसमर्पण के लिए बढ़ती हुई नारी पति को संकीर्ण मनोवृत्तियों को देखकर अकस्मात अपने स्वत्व को आहत हुआ अनुभव करने लगी हैं ।

मान-पत्र प्राप्ति के उत्सव पर न जाकर डाक्टर भटनागर की पत्नी को देखने चला जाना, इसी गुस्ताखी के लिए भरे-बाजार निर्विरोध जूतों से पिटना, पति के संदेह को हवा देना आदि बातें भी कल्याणी में विद्रोहात्मक प्रतिक्रिया की ही परिचायक हैं । कल्याणी प्रत्येक समस्या का हल मृत्यु को मानती रही हैं, इसीलिए उसके व्यक्तित्व में रुग्णता, अस्वस्थता, थकान, और निराशा के ही चिन्ह उभर सके हैं, ।

कल्याणी के पति डॉ. असरानी एक सामान्य सांसारिक जीव हैं । बड़े कर्मठ, हैं, जीवन में पराजय स्वीकार करना उन्हें स्वभावत: खलता हैं और प्रतिक्रिया के रूप में वे और भी अधिक शक्ति संचय कर समस्या से पुन: टकरा जाते हैं । यह सही हैं कि कल्याणी सरीखी नारी-रत्न को पत्नी रूप में पाने के लिए ' प्रयास ' कभी उनमें शठता की झलक भी दिखाते हैं, किंतु दूसरी ओर इससे उनका दृढ़ संकल्प भी प्रकट होता हैं । और फिर युध्द और प्यार में साधन नहीं, साध्य का मोल हैं , यह तो नीति हैं । इसके लिए कितनी बड़ी-बड़ी कुर्बानियां उन्हें देनी पड़ी हैं - पत्नी

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'कल्याणी' - - पृ. ६५
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड - बम्बई-४
संस्करण - १९६२

के कारण हर प्रकार की हेठी स्वीकार किए हैं, उनकी सब शर्तें मानकर भी उसे डॉक्टरी की मान प्रतिष्ठा पर बने रहने को बाध्य करते हैं, सब जगह उसका गुण गाते फिरते हैं, कभी पत्नी की कविता की प्रशंसा, तो कभी उसके मंदिर की तारीफ । पत्नी ही लज्जा के मारे भले कभी प्रशंसा से चिढ़ जाय, किंतु डॉ.असरानी सभी झेल लेंगी, और फिर भी उसकी तारीफ ही करेंगी । अति की सीमातक पत्नीवादी हैं वे किंतु ऐसे में भी कल्याणी पति की इन कुर्बानियों का सही मूल्यांकन न कर सके, तो भी उसे थोड़ा पीट देने का भी अधिकार नहीं देंगे आप पति को ?

आखिर पति तो उसे मानपत्र दिलवाने का आयोजन करे और पत्नी उसके घर में रोगी देखने चल दे, जो कभी प्रेम में प्रतिद्वन्द्वी रहा हो, तो क्या पति के हाथ नहीं खुजलाएँगे ? डॉक्टर असरानी ने कल्याणी को छल से पाया था, इसलिए मन किसी अन्य छल के झटके से बचने की चिंता में परेशान रहता है ।

डॉक्टर भटनागर के घर देखने को जाने पर भी वे कल्याणी को पीट सकते हैं किंतु औपचारिक लोभ चश्मा चढ़ाकर वे अपनी सदेह और छल की वृत्तियों को पूर्णतः भूलकर प्रीमियर और कल्याणी के स्वतंत्रतापूर्वक मिल सकने में कोई व्यवधान नहीं डालते । वरन् उसे डलियाँ दी जाती हैं । उसके लिए उपहार खरीदे जाते हैं और कल्याणी की पूर्व-मित्रता का आश्रय लेकर उससे स्वार्थ-सिध्दि की अनेक योजनाएँ बनाई जाती हैं । जब भी आप डॉक्टर असरानी को संकीर्ण मनोवृत्ति का पुरुष कहेंगे ? विवाह पूर्व के किसी प्रेमी को स्वतंत्रतापूर्वक मिल सकने की पत्नी को छूट दे सकना, डाक्टर असरानी का क्रान्तिकारी कदम है, " सराहनीय " भी है ।

(ख) नारी की राजनैतिक जीवन की समस्याएँ --

प्रेमचंद युग में ही नारी ने देश की स्वतंत्रता के आन्दोलन में भाग लेना शुरु कर दिया था । आधुनिक काल में उसने धीरे-धीरे अपनी सामाजिक - राजनैतिक चेतना की यथेष्ट विकास किया और अब वह राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति पूर्णत: सचेष्ट हो गई ।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही कुछ विशिष्ट महिलाओं ने मुक्ति-संघर्ष में भाग लेना प्रारंभ कर दिया था, यहाँ तक कि आतंकवादी आन्दोलनकारियों में भी कुछ साहसी महिलाएँ सम्मिलित थी, पर गांधीजी के नेतृत्व में जो राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ हुआ उसने महिलाओं के जीवन पर व्यापक प्रभाव डाला । अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा और आखिल भारतीय महिला संघ के आह्वान पर महिलाओं ने राजनैतिक कार्यों में सक्रिय योग दिया । अब राजनैतिक संघर्ष और भी तीव्र हो चला था, नारी शिक्षिता और विकसित होकर अधिकाधिक सक्रिय और समर्थ हो चली थी, साथ ही देश की मुक्ति की अनिवार्यता महिलाओं को स्थिति को भी अनुरुपित कर रही थी । इसीलिए सन् बयालीस के भारत छोड़ो आन्दोलन में महिला - विद्यार्थियों और युवतियों ने अभूतपूर्व ढंग से भाग लिया । श्रीमती अरुणा आसफ अली और श्रीमती इंदिरा गांधी इसी आन्दोलन के फल स्वरुप देश की प्रमुख नेत्रियाँ बन गईं । इसी समय में जब विदेशी साम्राज्यवाद की फलस्वरुप देश की प्रमुख नेत्रियाँ बन गईं ।

इसी समय में जब विदेशी साम्राज्यवाद की क्रूर नीति के कारण भारतीय साम्यवादी दल को वैध रुप से कार्य करने की छूट मिली, तब वर्ग-संघर्ष और सामाजिक क्रांति की पुकार पर अनेक महिलाएँ कम्युनिस्ट पार्टी में काम करने के लिए अग्रसर हुईं । उसके बाद साम्प्रदायिक मेल के प्रयत्नों में देश की मुक्ति के उषा:काल में, देश-विभाजन से उत्पन्न शरणार्थी समस्या को सुलझाने में और नये राष्ट्र की नयी यात्रा में महिलाओं ने प्राय: पुरुषों के समान ही भाग लिया ।

आधुनिक हिंदी उपन्यासोंमें नारी के इस दिनोंदिन बढ़ते राजनैतिक योगदान को कई स्तरपर और कई पहलुओं से चित्रित किया गया है। शुरु के कुछ उपन्यासों में अभिजात वर्गीय महिलाओं का योगदान चित्रित किया गया है, जो वर्गीय वैभव विलास के बीच भी देश सेवा की प्रेरणा से या दलितों को उठाने की प्रेरणा से राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश करती हैं। यह चित्रण अधिकतर आदर्शवादी अथवा स्वप्नशील ढंग पर मिलता है। बाद के उपन्यासों में लेखक की दृष्टि अधिक यथार्थवादी होती जान पड़ती है और मध्यवर्गीय महिलाओं के राजनैतिक संघर्ष का भी अंकन मिल जाता है। पर इस एक बात में ये उपन्यास मिलते हैं कि राजनैतिक क्षेत्र में महिलाओं के आने से उनके, उनके परिवार के, और अन्य सम्बन्धित व्यक्तियों के सामने जो प्रश्न आ खड़े होते हैं, उनकी अनदेखी किसी ने नहीं की है।

इस दृष्टि से एक तथ्य और महत्वपूर्ण है जिसका यहाँ उल्लेख करना समीचीन होगा। यद्यपि भारतीय आतंकवादी आंदोलन राष्ट्रीय चेतना के साथ ही जोर पकड़ने लगा था और बीच-बीच में उसके सदस्य अपने कारनामों से विदेशियों और देशवासियों को चौंकाते रहते थे, पर प्रेमचंद युग तक के उपन्यासों में न तो इस आन्दोलन का ही चित्रण मिलता है, न उसमें नारी के योग का ही। इसके कई कारण हैं। आंतकवादियों की गतिविधि को मुख्य कथानक के रूप में प्रस्तुत करना विदेशी शासन को ग्राह्य नहीं था, गांधीजी के नेतृत्व में अहिंसात्मक जन-आन्दोलन के विकास के कारण साधारणतः लेखकों का ध्यान उसी ओर था, और तीसरा, आंदोलन से जिन व्यक्तियों का घनिष्ठ परिचय था, और जो उसका चित्रण करने का साहस भी कर सकते थे और एक भीमासक ऐसा करना अपना कर्तव्य भी समझते थे वे लगभग सन १९३५ तक जेलों में बन्द थे और लिखने की स्थिति में नहीं थे। आतंकवादी अपना कार्य अत्यन्त गोपनीय और समुदायगत प्रणाली से करते थे और उनके कार्यों का यह गोपनीयता एक ओर उन्हें कुछ आकर्षण प्रदान करती थी तो दूसरी ओर उनके सम्बन्ध में अनेक झूठी-सच्ची बातों को प्रश्रय न होकर भावावेशयुक्त प्रचंड व्यक्तिवाद पर आधारित थी। यह बात उसकी सफलता को असंभव बनाती थी और उसमें भाग लेने वाले व्यक्तियों के मन और क्रिया-कलाप की विचित्र और असाधारण।

आतंकवादी युवक जहाँ आत्म-बलिदान में दृढ संकल्प और साहस का परिचय देता था । वहीं वह अपनी अनुभवहीन स्वप्नशील गति के कारण नाना प्रकार की चारित्रिक त्रुटियों का शिकार होता था । नारी से अपरिचय के कारण वह बहुधा उसको एक विचित्र लालसा से देखता था , और यौन आकर्षण के आगे उसका मन सहजही घुटने टेक देता था ।

इस पहलू का बड़ा बेजोड़ चित्रण जैनेंद्रजी के ' सुनीता ' में मिलता है । हरिप्रसन्न आतंकवादी क्रांतिकारी है, और सुनीता के पति श्रीकांत का मित्र है । वह कुछ दिन के लिए उनके घर आकर आश्रय लेता है । उसका विचित्र व्यक्तित्व सुनीता के लिए पहले सहज कौतूहल का और फिर नारी-सुलभ सहानुभूति का विषय बन जाता है । हरिप्रसन्न शायद इसके पूर्व कभी नारी के इतने निकट संपर्क में नहीं आयाथा । वह अचानक निश्चय करता है कि ' सुनीता ही वह देवी है जो उसके दल की नेत्री बने और उसके सदस्यों को प्रेरणा और पूर्ति दे । ' [१]

सुनीता अपने घर में पूर्णत: समर्पित होने के कारण हरिप्रसन्न के व्यवहार से तनिक भी कुण्ठित नहीं होती, पर हरिप्रसन्न भावावेश में उससे प्रणय-निवेदन कर अपने आपको अविश्वसनीय और अनुभवहीन सिध्द कर देता है । ' मैं कुछ नहीं जानता । मैं कुछ नहीं जानना चाहता ,सुनीता,दो तीन रोज मुझे और मिलेंगी । मैं कहाँ जाऊँगा, क्या करूँगा,नहीं जानता । सुनीता ' तुम क्या चाहते हो हरि बाबू ? ' क्या चाहता हूँ ? तुम पूछोगी - क्या चाहता हूँ ? तो सुनो, तुमको चाहता हूँ सम्पूर्ण तुमको चाहता हूँ । उसके बाद ' तो मैं तो हूँ । तुम्हारे सामने हूँ । ले क्यों नहीं लेते हो ? ' हरिप्रसन्न का हाथ घूमता-घूमता सुनीता की बाहु पर रुक गया था, वहीं पर रुका रहा । बोल उठा, ' भाभी ' तुम्हें काहे को झिझक है, बोलो । मैंने कभी मना किया है ? तुम मरो क्यों ? मैं तो तुम्हारे सामने हूँ । इन्कार कब करती हूँ ? लेकिन अपने को मारो मत । हरि बाबू, मरो मत,कर्म करो । मुझे

---

१ ' जैनेंद्रकुमार ' - ' सुनीता ' - - पृ. १३१-१३२
पूर्वोदय प्रकाशन,दरियागंज, दिल्ली-२
संस्करण - १९६०

चाहते हो, तो मुझे लेलो ।' और उसने अपने चारों ओर से साड़ी हटाना शुरु कर दिया .... हरिप्रसन्न ने दोनों हाथों से अपनी आँखे ढक लीं । उसके मुँह से शब्द नहीं फूट सका । सर्वथा पराभूत वह अपनी पराजय में गड़ जाने लगा । लाला ने उसे जमा दिया ।' भाभी - भाभी ।' कहता हुआ हाथ से आँखे मींचे - मींचे उठा और मुँह फेरकर वहाँ से चल पड़ा । कहा' भाभी' बस । मुझे मारो मत मारो मत ।'

'सुखदा' उपन्यास की 'सुखदा' अपने बड़प्पन प्रदर्शन के लोभ में ही वह घर से बाहर निकलकर बाहर की ही हो रही । किसी सभा की उपाध्यक्षा बनना अथवा मुख्य अतिथि रुप में भाषण झाड़ना उसे प्रिय लगने लगा । स्वामी का अविकल स्नेह उसे सदैव मिलता रहा, जिससे उसके स्वतंत्र मन की स्वच्छन्द वासनाएँ नित्य नए रुप बदलने लगी । बाहर के वातावरण में उसकी विशाल कल्पनाएँ घर के घेरे ने पिंदी-सा लगता और सुखदा क्षुब्ध हो-हो जाती ।

उपन्यास की केन्द्र बिंदु सुखदा की हीनता ग्रंथि को दो अन्य प्रवृत्तियों का अवलंब मिला हैं सुखदा में दूसरोंपर विजयी बनने की एक अदम्य तृष्णा दीख पड़ती हैं । अपने पति को हर बात में नीचा दिखाने की प्रवृत्ति से पीड़ित होकर ही वह अच्छी भली, अपने गृहणीत्व को पहचानती हुई अकस्मात क्षणांश में बटन दबते ही हीटर की तरह गर्मा जाती हैं और सम्पूर्ण सौम्य वातावरण कटुता में बदल जाता हैं । सम्पूर्ण उपन्यास में ऐसा अनेक बार होता हैं - वह स्वयं कहती हैं कि अचानक उसे क्या हो आता हैं, वह नहीं जानती क्रान्तिकारी दल में घुल-खेलने की आकांक्षा , घर से निकलकर नारियों के संगठन की अभिलाषा, अपनी जय-जयकार पर तृप्ति की अनुभूति, लाल द्वारा प्रशंसा पाकर फूली न समाना आदि ऐसे ही अवसर हैं, जब उसकी' विजय - वासना' को तोष मिलता हैं और वह सुखद अनुभूतियों में खो जाती हैं । वह विचार भी नहीं करना चाहती थी कि पति नाम का कोई पुरुष हैं ।

---

१ 'डॉ. बिंदु अग्रवाल - 'हिंदी उपन्यासों में नारी-चित्रण' - - पृ. २४४
प्रकाशक - राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज,
दिल्ली-६,
संस्करण - १९६६

जो उसे अविकल प्रेम का दान दे रहा हैं। मानवी होने के नाते कामवासना की स्थिति तो स्वाभाविक थी ही इसलिए जब उसका संपर्क लाल से बना, तो वह अनचाहें ही उसकी ओर खिंची चली गई। उसके विलास-भवन में जाकर रहने को भी तत्पर हुई। 'घर में बाहर का प्रवेश' में विशेष अभिप्राय यह हैं कि जब तक कोई अनजाना, अपरिचित पात्र घर के जीवन में प्रविष्ट न हो, तब तक गृहस्थी कैसे भी लुढ़के - खिंचे, टूटने तक की नौबत नहीं आती। ठीक हैं कि सुखदा पति के आर्थिक स्थिति पर असंतोष थी। यह भी सही हैं कि वह उसके पूर्ण अनुवर्ती स्वभाव से खीझा उठती थी, सच हैं कि वह अपनी चादर से बाहर पैर फैलाकर भी अपने अहम् को तुष्ट देखने की वांछा से पीड़ित थी, यह भी संभव हैं कि वह अपने वे अप्रभावित रहनेवालों से दूर रहकर ही पैतृक घराने की संपत्ति या योग्यता का गौरव मानने से नहीं चूकती थी, किंतु फिर भी ज्यों-त्यों गृहस्थी की गाड़ी खिंच तो रही थी, दाम्पत्य जीवन कट तो रहा था। ऐसे में गंगासिंह का प्रवेश 'घर में बाहर का प्रवेश' बन गया। घरेलू नौकर के रूप में परिवार में आश्रय लेनेवाला वह युवक जाने क्या क्रान्तिकारी पग उठाकर अकस्मात सुखदा के जीवन में आग लगा गया। सुखदा जैसे विक्षिप्त हो गई हो - उसके भीतर एक भाव विस्फोट-सा हो रहा था। एक क्रान्तिकारी, जिस देश की गर्व हैं, उसके परिवार में रति। इस परिदृश्य से पूर्ण परिचिता न होते हुए भी वह बदहवासी में अपने दाम्पत्य पर ही आघात आरम्भ कर देती हैं। पति को फटकर पिलाती हुई कहती हैं, 'चुप रहो, बातें न बनाओ। तुम कुछ नहीं जानते। क्रान्तिकारी को मैं जानती हूँ। तुम तो अपनी नौकरी संभालो। चले उसे समझाने। उसके पैर की धूल भी तुम हो?' १

दूसरे को अपने से हेय समझाने की प्रवृत्ति तो पहले से ही थी, यही 'घर में बाहर के प्रवेश' ने क्या को ऐसा मोड़ दिया कि गृहिणी सुखदा घर से विमुख होकर क्रान्तिकारी - दल की सदस्या बनकर सामने आई।

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'सुखदा' - - पृ. १८

पूर्वोदय प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली-२

संस्करण - १९६०

क्रांतिकारी दल एवं उसकी अव्यवस्था है। देश की परतंत्रता की श्रृंखला तोड़ने का बीड़ा उठानेवाली कुछ साहसी और आत्म-बलिदान का आव्हान कर सकने वाले युवकों का यह दल विदेशी राज्य के प्रति हाथियार उठाकर देश - वासियों को जागृति प्रदान करना चाहता था। हरिदा दल के नेता थे। सरकारी खजाना लूटना, बम-पिस्तौल के अवैध प्रयोग से विदेशी अधिकारियों को त्रस्त करना, गुप्त सभाएँ करके जनता को जगाना आदि कृत्य इस दल की कार्य प्रणाली थी। किंतु जब तक समूची जनता दल का साथ न दे, मुठ्ठीभर युवक सरकार की कड़ी निगरानी तथा सेना पुलिस आदि के सामने क्या कर सकते थे। स्वयं हरिदा ने महसूस करना शुरु कर दिया है कि यह क्रान्ति हिंसात्मक प्रणाली सफल नहीं हो सकती। यह अव्यवस्थित, अनियमित, तथा बन्द आंदोलन आखिर कब तक चल सकता है? इसे बन्द करने का विचार स्वयं हरिदा के शब्दों में सोचता हूँ, क्या अब यह काम बन्द नहीं हो जाना चाहिए। .... मेरे बाईस बरस इसमें गये हैं। विश्वास मेरा डिगा नहीं है, लेकिन समय तो आगे बढ़ता है। शायद समय आगे बढ़ गया है। शायद अब जो आन्दोलन हो, व्यापक हो, खुला हो। हमने काम किया और काम वह मूल का था ऐतिहासिक था। हमने आग जगाई, और चिंगारी फूंगी। लेकिन अब दावानल दहकेगा। चिंगारियाँ बरखाने की जरूरत नहीं। अपने वेग से ही अब वह फैलेगा और दल का वह नहीं, राष्ट्र का अभियान होगा। कोटि-कोटि जनता हुंकार कर उठेगी।'[१]

दल की अव्यवस्था को महसूस करते हुए ही उसके नेता हरिदा ने महसूस किया कि क्रान्ती लाना, देश को स्वतंत्रता दिलाना, गुलामी की श्रृंखलाएँ काट फेंकना किसी व्यक्ति या छोटे दल के द्वारा सम्भव नहीं हो सकता। क्रांति जन-जन की चिंगारी का नाम है, अत: कोई राष्ट्र व्यापी अभियान ही स्वाधीनता ला सकता है। क्रांति-दल ने लोगों को जागृति दी है, लोगों को पत्ता चल गया है

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'सुखदा' - - पृ. १५५-१५६
पूर्वोदय प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली-२
संस्करण - १९६०

कि वे पराधीन हैं । उन्हें स्वतंत्र होना हैं । यही पर्याप्त उपलब्धि हैं क्रांति-दल की । एक दूसरे से ईर्ष्या करके आपस में ही गोला चलाने में क्रांति नहीं, मार देने का अर्जित शक्ति का अपव्यय मात्र हैं ।

(ग) वेश्या वृत्ति की समस्या --

प्रेमचंदोत्तर काल में वेश्या वृत्ति की समस्या के संबंध में भी हम उपन्यासकारों के दृष्टिकोण में स्पष्ट अन्तर और विकास पाते हैं।

जहाँ तक वेश्या-वृत्ति के लिए समाज के दायित्व का प्रश्न है इस युग के अधिकांश उपन्यासों में भी सुधार की ही भावना पाई जाती है। कहीं वेश्या की विवशता और छटपटाहट का चित्रण है तो कहीं पुरुष समाज के प्रति उसके मन का घृणा तीखे व्यंग्य के रूप में व्यक्त हुई है। किंतु इस युग के उपन्यासों में प्रेमचंद युग के उपन्यासों जैसा आदर्शवादी समाधान नहीं मिलता।

आधुनिक युग की वेश्या अपनी पतितावस्था के प्रति सजग होती जाती है। उसकी स्थिति क्यों ऐसी है उसके मूल में क्या कारण है, यह इसको भी समझने लगी है। जो व्यक्ति समाज के नेता हैं, जिनके हाथ में समाज की बागडोर है, वे भी अपनी वासना की तृप्ति के लिए वेश्या के यहाँ जाने में नही हिचकते।

पुरुष के आचरण की विडम्बना का यही अन्त नहीं हो जाता। वेश्या के यहाँ पहुँचकर भी अनैतिक कार्य करते हुए भी वे उसे अपने जाल में अधिकाधिक फँसाने के लिए उसकी सहृदयता और सभ्यता का गुण-गान करने लगते हैं।

'त्यागपत्र' में जैनेंद्रजी ने आनुषंगिक रूप से वेश्यावृत्ति की समस्या की ओर संकेत किया है। पति के द्वारा निकाल दिये जाने पर मृणाल कोयलेवाले के संग रहने लगती है। मृणाल का यह कार्य वेश्यावृत्ति की ही श्रेणी में आता है। कोयलेवाला मृणाल के रूप और यौवन पर मोहित होकर उसकी असहाय स्थिति से लाभ उठाता है और मृणाल निराश्रित होने के कारण उसकी इच्छा का शिकार बन जाती है। जब मृणाल का सम्पन्न भतीजा प्रमोद उसको इसे स्थिति से उबारना चाहता है तब मृणाल उसके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती।

'त्यागपत्र' की मृणाल के चरित्र - निर्माण पर नीति-अनीति की दृष्टि से सामाजिक हिताहित का विचार कर अनेक आरोप लगाए गए हैं। इनमें अधिकांश जैनेंद्रजी के आत्म-पीडन के सिध्दान्त की अमान्यता अथवा उपन्यास के उद्देश्य-रूप में

उसके अस्तित्व के अज्ञान से ही निकले हैं।

क्या मृणाल के लिए कोयलेवाले को स्वीकार करना उचित था ?

डॉ.नगेंद्र ने अपने नारी और त्यागपत्र शीर्षक लेख में इस प्रश्न का उत्तर अपनी दृष्टिसे दिया है। परंतु मेरा मत इस विषय में पूर्णतया भिन्न है। जैसा कि डॉ. नगेंद्र ने कहा है 'अतिशय संवेदनशीलता के कारण सम्भवत: ऊब जाने अथवा समाज के प्रति चॅलेंज के रुप में मृणाल इस मार्ग पर कदम नहीं रखती है।'[१] इस विषय में पुष्टि के लिए स्वयं मृणाल के शब्द उध्दृत किए जाते हैं ` मैं जब वहाँ कोठरी में अकेली थी, तब मरी क्यों नहीं क्या यह जानते हो ? मैंने यह सोचा था और चाहा था कि मैं मर जाऊँगी। ऐसे जीने में क्या है ? लेकिन एकाएक मुझ को पता लग आया कि जिसने जीवन दिया है, मौत भी उसकी दी हुई मैं ले सकती हूँ। अन्यथा अपने अहंकार के वश मरनेवाली मैं कौन होती हूँ ? भूख से मरना पडे तो मैं मर भी जाऊँ , पर सोच-विचार कर अपघात कैसे कर सकती हूँ ? उसके तीसरे रोज इसी आदमी ने कोयलेवाले ने खतरा उठाकर मुझको पूछा था। उस आदमी के यों पूछने में क्या बुराई थी ? शायद मेरे रुप का लोभ तो उसे था, लेकिन उसके लिए मैं उसे दोष क्यों देती ? वह विघ्नों की तरफ अन्धा होकर मेरे पास आया। उसका अपना परिवार था, मेली-जोली थे। उनकी ओरसे लापरवाह होकर ताने और धमकी सहकर पहले चोरी फिर उजागर, उसने मुझे सहायता दी। उसकी चोरी में मेरा भाग न था। .... मेरे रुप का लोभ उस पर बढता गया। वह नशा हो आया। मुझे उस समय उस पर बडी करुणा आई। प्रमोद, तुम्हें कैसे बताऊँ ,तुम बालक हो । लेकिन इस अभागे आदमी का मद उस पर इतना सवार हो गया कि मैं नहीं कह सकती। अपने परिवार को वह भूल गया,अपने कारोबार को भी भूल गया। मेरे लिए सब स्वाहा करने पर तुल पडा। ... ऐसा त्रास मैंने बहुत कम पाया है। उसका प्रेम स्वीकार करने की कल्पना भी दुर्विसह्य थी। पर उसका दायित्व क्या

---

१ 'रघुनाथसरन झालानी' - 'जैनेंद्रकुमार और उनके उपन्यास -' - पृ.६९
प्रकाशन - नेशनल पब्लिशिंग हाउस,नई सडक, दिल्ली-
संस्करण - १९५६

मुझपर न था ? और यह भी ठीक है कि उस समय उसका सर्वस्व मैं ही थी । मैं उसके हाथ से निकलती तो वह अनर्थ ही कर बैठता । अपने को मार लेता था, शक्ति होती तो मुझे मार देता । सच कहती हूँ, प्रमोद, कि उस समय उस आदमी पर मुझे इतनी करुणा आई कि मैं ही जानती हूँ । मैं उसके इस भ्रम को किस भाँति न तोड़ सकी कि मैं ही जानती हूँ । कि मैं उसकी हूँ, उस पर मुग्ध हूँ । ऐसा करना निर्दयता होता, मेरे पास जो कुछ बचा खुचा था, मैंने उसे सौंप दिया।' [१]

मृणाल का यह वक्तव्य न इस बात का खण्डन करना है कि मृणाल उस कोयलेवाले की ओर प्रवृत्त थी, कोयलेवाले के प्रति निस्सीम करुणा से मृणाल का हृदय आप्लावित है । उसके सुख और जीवन-रक्षा के लिए अपनी,अनिच्छा का दमन और आत्मकष्ट मृणाल को स्वीकार है । इसमें समाज के विधान के प्रति विरोध अथवा प्रतिहिंसा की वृत्ति भी नहीं है । "मैं समाज को तोड़ना फोड़ना नहीं चाहती हूँ । समाज टूटी कि फिर हम किस के भीतर बनेंगी ? या कि किस के भीतर बिगड़ेंगी ? इसलिए मैं इतना ही कर सकती हूँ कि समाज कि समाज से अलग होकर उसकी मंगलाकांक्षा में खुद ही टूटता रहूँ ।" [२]

फिर क्या मृणाल का कोयलेवाले के साथ भागना 'समाज को तोड़ना - फोड़ना ' नहीं है ? नहीं । वह पति-परित्यक्ता असहाय नारी है । पितृ-गृह में भी उसके लिए स्थान नहीं है, वह समाज की उच्छिष्ट है ।' जो समाज के उसके उच्छिष्ट हैं, या उच्छिष्ट बनना पसंद कर सकते हैं, उन्हीं को जीवन के साथ नए प्रयोग करने की छूट हो सकती है ।' और वास्तव में आत्म-पीड़न की दृष्टि से उसका यह जीवन प्रयोग ही तो है ।

---

१ 'रघुनाथसरन झालानी' - 'जैनेंद्र और उनके उपन्यास' - - पृ. ६९-७०
संस्करण - १९६६

२ 'जैनेंद्रकुमार' - 'त्यागपत्र' - - पृ. ६६
पूर्वोदय प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली-२
संस्करण - १९७९

कोयला बेचने वाले बनिये को स्वीकार करना पति रहते हुए भी समाज के नीति-विधान की दृष्टि से अनैतिक हो सकता है किंतु वह मृणाल की आत्मा का परिष्कार ही है। एक यह भी प्रश्न उठाया गया है कि "क्या अधिक सम्मानपूर्ण उपायों का अवलंबन वह नहीं कर सकती थी।"[१] क्या रूप लोभ के वशीभूत कोयलेवाले के मृणाल के प्रति घोर राग की उपस्थिति में उसके लिए कोई अवकाश था ? वास्तव में इस प्रश्न की।

---

१ 'रघुनाथसरन झालानी' - 'जैनेंद्रकुमार और उनके उपन्यास' - - पृ. ७०
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई सड़क,
दिल्ली,
संस्करण - १९५६

(ग) परित्यक्ता नारी --

जैनेंद्रकुमार ने अपने ' त्यागपत्र ' उपन्यास में परित्यक्ता नारी का रूप दिखाया है । मृणाल के माता-पिता दोनों ही काल - कवलित हो चुके हैं । उसका लालन,पोषण, शिक्षा-दीक्षा उसके भाई-भावज अपने पुत्र प्रमोद के साथ करते हैं । मृणाल जब यौवन में आती है तो वह सखी शीला के भाई के प्रेम में अपने आपको पाती है । भाई-भावज जब उसके इस सम्बन्ध को जान पाते हैं तो उसे कठोर दण्ड मिलता है और शीघ्र ही अन्यत्र उसके विवाह का प्रबन्ध हो जाता है । मृणाल का पति कुछ अधिक उम्र का है और अधिक पढ़ने लिखने में अरुचि रखता है । हृदय का वह अनुदार और कठोर है । वैवाहिक सम्बन्ध अच्छे नहीं बन पाते और गर्भावस्था में एक दिन मृणाल एक नौकर को लेकर भ्रातृ-गृह में आ जाती है । अब वह अपने पति के घर जाने को राजी नहीं है किंतु उसका भाई उसे पति की नाराजगी में अपने घर रखने के लिए तैयार नहीं है । फिर भी न लौटने का निश्चय कर मृणाल अपने पति के यहाँ चली जाती है ।

मृणाल का संबंध अपने मायकेवालों से ही नहीं टूट गया, बल्कि अपने समस्त प्रेम कामनाओं पर तुषार पात करनेवाले उस अनचाहे अधेड पति से भी टूट गया । उसने उसे दुश्चरित्रता का खिताब देकर मारा-पीटा, सदा के लिए मायके-चले जाने को कहा, पर माय के जाने के लिए किसी भी प्रकार प्रस्तुत न हुई, तो उसे एक दिन उसी शहर की एक छोटी-सी कोठरी में अकेली रख दिया । प्रमोद, जो अब बी.ए. छात्र था, उसे खोजते हुए उसके पास पहुँचा,तब वह उस कोठरी को भी छोड़कर , कहीं अन्यत्र एक कोयलेवाले के साथ रह रही थी ।

जिसने पति से परित्याग होने के बाद उसकी सहानुभूति तो की ही थी, उसके प्रति अपना उमड़ता प्रेम प्रगट करते हुए यहाँ तक कह दिया था कि उसके बिना वह जीवित नहीं रह पायेगा । उसकी साहयता के बदले में प्रतिदान के रूपमें मृणाल ने उसकी सेवा करने के लिए अपना तन-मन सभी कुछ अर्पित कर दिया था । कहना

चाहिए कि उपन्यासकार जैनेंद्र जी की दार्शनिक मान्यता के अनुसार यहाँ से मृणाल पतिव्रत की भूमिका का त्याग-जिसे जैनेंद्रजी ने महत्वपूर्ण नहीं मानते, सतीत्व-धर्म की भूमिका पर उतर आती हैं। वह अपनी ' संवेदना बाँटने लगती हैं। ' स्व ' का ' पर ' में उत्सर्ग करने लगती हैं। पर पति और पतिव्रता को छोड़कर उसे इस प्रकार के दार्शनिक झमेलेवाले सतीत्व की भूमिका तक कैसे पहुँचना पड़ा, प्रमोद की जिज्ञासा पर वह बताती हैं।

' पति को मैंने नहीं छोड़ा उन्होंने ही मुझे छोड़ा हैं। मैं स्त्री-धर्म को पतिव्रत धर्म ही मानता हूँ। उसको स्वतंत्र धर्म मैं नहीं मानती। क्या पतिव्रता को यह चाहिए कि पति उसे नहीं चाहता तब भी वह अपना भार उस पर डाले रहे ? वह मुझे नहीं देखना चाहते, यह जानकर मैंने उनकी आँखों के आगे से हट जाना स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा - मैं तेरा पति नहीं हूँ। तब मैं किस अधिकार से अपने को उन पर डाले रहती ? पतिव्रता का यह धर्म नहीं हैं। '[१]

क्यों उन्होंने पति होने से इनकार कर दिया और क्यों मृणाल को इस प्रकार के अनोखे पतिव्रता के धर्म का पालन करना पड़ा, इसका कारण भी स्वयं मृणाल ही प्रमोद को बताती हैं ' प्रमोद, शीला के भाई को तो तुम जानते हो ? .... उनका एक पत्र आया था। पत्र में कुछ विशेष नहीं था। यही था कि -- मैं अब सिविल सर्जन हूँ। शादी नहीं हुई हैं, न करूँगा। तुम्हारा विवाह हो गया हैं, तुम सुखी रहो। मेरे लायक कुछ सेवा हो तो लिख सकती हो। ' उस पत्र को लेकर ही मेरे मन में सोच-विचार का चक्कर चला था।

मैंने जवाब में लिख दिया था कि ' आपके पत्र के लिए कृतज्ञ हैं। पर आइंदा आप कोई पत्र न भेजें। मैं सुखी होने की कोशिश कर रही हूँ। ' जवाब देने से पहले दोनों पत्रों का जिक्र तुम्हारे फूफा से कर देना जरूरी था। सुनकर

---

१ ' जैनेंद्रकुमार ' - ' त्यागपत्र ' - -- पृ. ५५
पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली-२
संस्करण - १९७९

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

उन्होंने कहा कि मुझसे कहने का कुछ जरूरत नहीं है, यही था तो मुझसे शादी क्यों की ? कुछ देर बाद उन्होंने कहा कि मैं हरामजादी हूँ। .... उसके बाद फिर कुछ दिन बीत गए। मैं उनकी राह की बाधा थी। एक दिन उन्होंने एकदम आकर कहा -- 'चल, निकल यहाँ से। मैंने आशा न मानने की जिद नहीं की। मुझे वहीं शहर से दूर एक कोठरी में लाकर छोड़ गए। यहां कुल कहानी है।' पर वह घर क्यों नहीं गई, इसका उत्तर मृणाल के पास यह था कि 'स्त्री जब तक ससुराल की है, तभी तक मैके की है। ससुराल से टूटी तब मैके से तो साथ ही में टूट गई थी।'

लेकिन मेरा अस्तित्व मेरे लिए नहीं है। उस समय तो बेशक मैं कोयलेवाले की सेवा के लिए हूँ।

(ड.) स्वच्छन्द प्रेम की समस्या --

जैनेंद्रकुमार के उपन्यासों में स्वच्छंद प्रेम और विवाहपूर्व प्रेम दोनों की स्थितियाँ प्राय: एक-सी लगती हैं। वस्तुत: जैनेंद्र जी ने इन दोनों स्थितियों को मूलत: मानवीय स्थिति में देखने का प्रयास नहीं किया हैं। ऐसे लगता हैं जैसे कि विवाह से पूर्व कट्टो, मृणाल, सुनीता का स्वच्छन्द प्रेम उस प्रेम की तैयारी हैं अथवा महत्वपूर्ण चरण हैं जिसके बिना आगे प्यार की प्रतीति संभव नहीं हैं। वस्तुत: इस तरह के प्यार को दिखाकर जैनेंद्र जी स्त्री-पात्रों का मनोविज्ञान देकर विस्तृत क्षेत्र प्राप्त करते हैं। जैसे स्त्री पात्रों के आंतरिक चरित्र को एक विशेष आयाम मिलता हैं। गहराई से निरीक्षण करने पर स्वच्छन्द प्रेम और विवाहपूर्व प्रेम दोनों सर्वथा विभिन्न स्थितियाँ हैं। विवाह से पूर्व कोई भी प्रेम एक स्थिति मात्र हो सकता हैं किंतु स्वच्छन्द प्रेम एक विशेष आयाम हैं या एक विशेष प्रसंग हैं जिसमें स्त्री-पुरुष में प्रसंग छिड़ता हैं। इस दृष्टि से विशुध्द स्वच्छंद प्रेम की दिशा में कट्टो और मृणाल का हा प्रेम आ सकता हैं।

सुनीता विवाहपूर्व प्रेम के क्षेत्र में आता हैं। क्योंकि कट्टो और मृणाल के चरित्र को उपन्यास के प्रारंभिक हिस्सों में जिस रुप को निर्मित किया गया हैं उस से लगता हैं कि उपन्यासकार की दृष्टि चरित्र के उन विशेष तत्वों पर ही रही हैं। जिनके फलस्वरुप उन्हें स्वच्छन्द प्रेमिकाएँ बनने की अनिवार्यता प्रदान करती हैं। उनका रुप-रंग वर्णन उनके व्यवहार और प्रकृति की विशेष स्वच्छंद--तावादी वृत्तियाँ उनकी कर्म प्रेरणाओं के अन्तस्थल में छिपी विशेष मनो - ग्रंथियों और उनका इतना विशद चित्रण इसका सबूत हैं कि जैनेंद्रजी कट्टो और मृणाल को इसी रोमांटिक, या प्लेटोनिक प्रेम के भीतर ही देखना चाहते हैं।

जैनेंद्रजी के प्राय: स्त्री-प्रसंग में पति के स्थान में प्रेमी को लेते हैं। विशेषकर ऐसा प्रेमी जो कि उसका नहीं हो पाता। और दूसरी ओर हम यह भी देखते हैं कि जिस स्त्री-पुरुष में विवाह हो जाता है उनके प्रति वे संपूर्ण रुप से समर्पित नहीं हो पाते। ऐसा लगता हैं कि उनके जीवन में घटित कोई स्वच्छन्द

प्रेम उनके मानसिक जगत को अभिभूत किए रहता है। इसी कारण जैनेंद्रजी के सभी पात्र नाटकीय और अतिरंजित से लगते हैं।

जैसे विशेषकर कट्टो, कल्याणी और सुनीता। किंतु यदि इस स्वच्छन्दतावादी प्रेम के मनोविज्ञान को हम ध्यान में रखने तो स्त्री पात्र स्वाभाविक अतिरंजित, अपवादपूर्ण नहीं लग पायेंगी। इसके लिए जैनेंद्रजी एक विशेष मानसिक स्थिति निर्माण करते हैं, जैसे 'परख' में विशेष परिस्थिति दिखाई है कट्टो की। कट्टो विधवा है किंतु वह अभी मुग्धा और नवयौवना है, साथ ही सत्यधन युवक, प्रेमी हृदय तथा अपने हृदय में अनेक आदर्श रखनेवाला किंतु समय आने पर पीछे हटनेवाला - दूसरी ओर एक विशेष मानसिक स्थिति को यों निर्माण करते हैं। जैसे 'परख' की कट्टो लडकी तन-मन से पढ रही है, पर मास्टरजी तन-मन से नहीं पढा रहे हैं। वह जाने क्या देखते हैं, और सोचते हैं। लडकी अपनी सलेट को कापी बनाकर लिखने लगी है कि उसकी इंगलिश रीडर इन्होंने उठा ली। जो पाठ आज पढना था उस सफे पर निगाह जमाते जमाते लिखना शुरु कर दिया। छपी लाइनों के बीच-बीच में मोती से अक्षरों में लिखा - 'हमारी कट्टो पढती है। लोग कहते हैं, वह विधवा है। हम कहते हैं वह कट्टो है और दुनिया भर से अच्छी है।'[१]

इस परिस्थिति और मानसिक स्थिति में दोनों को परस्पर अवगुंठित करके जैनेंद्रजी इस स्वच्छन्द प्रेम का निर्मिति करते हैं। कट्टो और सत्यधन का समीप आने पर और सत्यधन का कट्टो को पढाने में इस स्वच्छन्द रहस्यात्मक असाधर प्रेम का विशाल रुप विकसित करते हैं। "किताब को गुरुजी ने दुबका ली थी -- उन्होंने कुसूर किया था। किताब भी कुछ ऊटपटांग लिखने की चीज है? कट्टो ने अपने चारों तरफ किताब देख ली पर न मिली। गुरुजी ने पूछा - क्या है? उत्तर मिला हमारी रीडर।' क्या हमने ले ली?' कहाँ गई? "देखो' कट्टो ने

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'परख' - - पृ.१५

हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड,

बम्बई-४,

संस्करण - १९४१

फिर देखना शुरू किया । हारहूर कर आ खड़ी हुई - ‘देख तो ली ।’ ‘कोई फरिश्ते थोड़े ही ले जायेंगे । फिर देखो ।’ गुरूजी ने कहा और किताब कोट की तह में सरका ली । .... बहुत कुछ देखा तो उसी कमरे के एक कोने में औंधी पड़ी हुई वह किताब मिल गई । ‘कहाँ तो पटक देती हो, फिर कहती हो कहाँ चली गई ?’ ‘मैंने तो संभाल के रखी थी’ ‘बड़ी अच्छी रक्खी थी ।’ .... अच्छा अब सबक शुरू करो ।’ सबक शुरू हुआ । वही पन्ना खुला ‘ हैं । ये क्या कर दिया ?’[१]

इसके बाद दोनों में जो संवाद होता है उसमें इस स्वच्छन्द प्रेम की एक अजब रहस्यमयता और स्निग्धता प्रगट होती है । सत्यधन पढ़ाते समय कहता है, ‘हरे हरे । मैं कोई बेवकूफ हूँ ।’ ‘हाँ-हाँ । चुपचाप किताब उठाली होगी ।’ ‘हमें दूसरी किताब लाके दो ।’ ‘कौन लाके दे ?’ ‘तुम’ । ‘हम नहीं जानते’ । ‘तो हम भी नहीं जानते ।’ ‘हम तो नहीं ..... ।’ ‘तो हम भी नही .... ।’ ‘नहीं लाके देने के ?’ ‘नहीं लाके देने के ।’ ‘तो हम भी नहीं पढ़ते ।’ ‘मत पढ़ो ।’ ...... मास्टर जी ने कहा तो यह किताब मुझे दे दो । लड़की ने कहा - तो हम नहीं देते यह तुम्हें । तुम इसका क्या करोगी ?’ कुछ भी करें ।’ आखिर क्या ?’ फाड़ दूँगी ।’ ‘अरे नहीं नहीं ।’ .... मास्टर जी ने कहा तुम्हारे हाथ जोड़ूँ फाड़ो मत । लड़की ने कहा अच्छा जोड़ो हाथ । मास्टरसाहब ने जोड़ दिए । बालिका ने अपने दोनों हाथों से उन जुड़े हुए हाथों को पकड़ लिया किताब देते हुए कहा ‘लो’ फिर कहा - ‘अच्छा अब सबक पढ़ाओ’ मास्टरजी चुपचाप सबक पढ़ाने लगे । .....’ ।[२]

---

१ ‘जैनेंद्रकुमार’ - ‘परख’ - - पृ. १५-१६
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड,
बम्बई-४, संस्करण - १९४१

२ ‘जैनेंद्रकुमार’ - ‘परख’ - - पृ. १६-१९
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड,
बम्बई-४, संस्करण - १९४१

आदि संवाद में भी परिस्थिति निर्माण के व्यतिरिक्त जैनेंद्रजी की भाव धारणा विशेषाकर स्त्री चरित्र के प्रति मूलत: रामांटिक हैं उनके रूप, सौंदर्य वर्णन व्यवहार उनकी चेष्टाएँ करुणा प्रेरणाएँ इन सब की कल्पना और इन सबकी निर्मिति इन्हीं रंग और रेखाओं से करते हैं। जिसमें मुक्ति का आभास है।

' परख ' का कट्टो में सुंदरता नहीं हैं। एक - एक अवयव को गौर से देखेंगे तो उसमें अनेक दोष निकाले जा सकते हैं पर वह इन सबसे भिन्न है, और समझाती है, ' वह असुंदर नहीं है, रंग उतना उजला नहीं जितना सांवला है।' [१]

इसके आगे वे इस कट्टो के रूप सौंदर्य के उन रहस्यमय बिंदुओं की ओर जैसे संकेत करते हैं कि लगता है कि कट्टो का निर्माण इस तरह के प्रेम के लिए ही हुआ है। कट्टो की आँखों में कुतूहल मिलता हैं, औत्सुक्य है, हरियाली है, सब निमंत्रण है, सब चेतावनी है और इनके साथ ही एक ऐसा चमक है जैसे मानो स्त्रीत्व छनकर इन आँखों में भर गया है।' [२]

प्रेम का प्रारंभिक रहस्यात्मक आकर्षण और स्वच्छन्द प्रेम की भावना और स्थिति को जैनेंद्रजी के उपन्यासों में स्त्री चरित्र के माध्यम से विशेष प्रकार मानव मूल्यों के सन्दर्भ में प्रकट किये गये हैं। इन मानव मूल्यों में मुक्ति की भावना सबसे अधिक है।

" त्यागपत्र' में मृणाल जब अकेली छत पर घन्टों तक बैठा करती थी, तब प्रमोद यह अनुभव करने लगता कि उन्हें अब एकान्त बुरा नहीं लगता। शाम को छत

---

१ 'जैनेंद्रकुमार '-'परख '- - पृ. २०
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड,
बम्बई-४, संस्करण - १९४१

२ 'जैनेंद्रकुमार '-'परख '- - पृ. २२
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड,
बम्बई-४, संस्करण - १९४१

पर खटोला डाले ऊपर उड़ती हुई चीलों को चुपचाप देखना, उड़ती हुई पतंग को आँख गाड़े हुए देखना[1] यह सारे दृश्य मुक्ति के प्रति आकांक्षा का संकेत हैं। एकाएक लजाना आदि के प्रसंग में पतंग, चिड़ियाँ, पृथ्वी पर अनायास खींचा जाना शून्य आकाश देखते जाना यह सारी परिस्थितियाँ प्यार, स्वच्छन्द प्यार, उसी ओर की मुक्ति का संकेत हैं। जैसे जैनेंद्रजी की मृणाल व्याकुल है स्वच्छन्द प्रेम की इन अस्पष्ट तथा व्याकुल स्थितियों में एक स्थिति ऐसी भी आती है जब जैनेंद्रजी के स्त्री पात्र अपने प्रिय से सम्बन्ध बोध को निश्चित सम्बन्ध ज्ञान में बाँध नहीं पाती हैं। वह प्रिय को मित्र, भाई, भतीजा, सखा, इन सब सम्बन्धों में रखकर भी संतुष्ट नहीं हो पाती और वह उन से कुछ रहस्यात्मक, कुछ अस्पष्ट सम्बन्ध बोध में बाँध कर रहना चाहती हैं।

'त्यागपत्र' में जब बुआ उस सहेली शीला के घर हो आई थी। जहाँ शीला के भाई से भेंट हुई थी इसके उपरांत जब बुआ प्रमोद से मिलती हैं, तो उनका स्वच्छन्द मन उस स्वच्छन्द प्यार को व्यक्त नहीं कर पाता और ऐसा लगता है कि जो बात प्रमोद से कहती थी कह नहीं पाती थी। ऐसा भी लगता था कि उस समय उनके मन में कुछ नहीं ठहरता था। न विचार, न अविचार जैसे भीतर बस हवा हो और मन हलका-फुलका बस उड-उड जाना चाहता हो। वह बे बात हँसती थी और बे बात प्रमोद को पकड़ कर इधर-उधर खींचती थी।

मन की ऐसी स्वच्छन्द स्थिति में वस्तुत: संबंध ज्ञान की वास्तविकता जैसे अस्थिर होने लगती है। प्रमोद उस स्थिति में समझ नहीं पा रहा था कि बुआ को क्या हो रहा है, 'बुआ' आज क्या बात है? बोली - 'मैं बुआ हूँ। बुआ मुझे अच्छा नहीं लगता, प्रमोद तू मुझे जीजी कहा कर, चीजी, शीला मुझे जीजी कहती है मैंने कहा - मेरी तो बुआ हो' मैं नहीं बुआ होना चाहती बुआ। छी'।

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'त्यागपत्र'- - पृ. १३-१४
पूर्वोदय प्रकाशक,
संस्करण - १९७८

देख चिड़िया कितनी ऊँची उड़ जाती है मैं चिड़िया होना चाहती हूँ ।` `मैंने कहा - चिड़ियाँ ?` बोली - `हाँ चिड़ियाँ उसके छोटे छोटे पंख होते हैं, पंख खोल वह आसमान में जिधर चाहे उड़ जाती हैं क्यों रे, कैसी मौज है। नन्ही-सी चिड़ियाँ, नन्ही-सी पूँछ, मैं चिड़ियाँ बनना चाहती हूँ ।`[१]

इस प्रकार उसके मन में मुक्ति के भाव हैं जो बार-बार उमड़ आते हैं पर वे अस्थिर हैं। मन के भाव बताना चाहती, शब्द ओठों तक आते हैं पर उन भावों को न बताकर प्रकृति की मुक्ति का चिड़ियाँ के माध्यम से अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति का संकेत करती है। जैनेंद्रजी की यह कुशलता है कि मन के भावों को व्यक्ति की एकांतिकता में सही सही दिखलाना और प्रकट में प्रकृति की मुक्ति का उदाहरण संकेत द्वारा दिखलाना। मानो वे बतलाना चाहते हैं कि प्रकृति मुक्त है, नग्न है श्लील है। मानव भी जितना प्रकृति की ओर जाएगा उतना ही मुक्त नग्न और श्लील बनेगा। इसलिए मृणाल स्वच्छन्द है। प्रमोद से पूछती है `प्रमोद तू मुझे प्यार करता है ?` सुनकर बिना कुछ बोले मैंने अपना मुँह उनकी छाती के घोंसले में और दुबका लिया। इस पर वह बोली - `प्रमोद मैं तुझे प्यार करती हूँ ।`[२] ऐसे अनेक उदाहरण `त्यागपत्र` में स्वच्छन्द प्यार के मिलेंगे जहाँ मृणाल के मानसिक भाव दबे हुए हैं और अस्थिर एवं मुक्त हैं।

इस प्रकार जैनेंद्रजी के उपन्यासों में नारी से संबंधित विभिन्न समस्याओंकी मार्मिक झलक मिलती दिखाई देती है।

---

१ `जैनेंद्रकुमार` - `त्यागपत्र` - - पृ.१२
पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली-२,
संस्करण - १९७९

२ `जैनेंद्रकुमार` - `त्यागपत्र` - - पृ.१२
पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली-२,
संस्करण - १९७९ ।